मन्दिर की नर्तकी

आचार्य चतुरसेन

शिलालेख पब्लिशर्स, दिल्ली-110032

1

नगर सेठ धनंजय का हिमधौतधवल महालय आज विविध रंग की पताकाओं से सजाया गया था। सिंह-द्वार का तोरण फूलों से बनाया गया था। बड़े-बड़े हाथियों, घोड़ों, रथ-पालकी आदि वाहनों पर नगर के धनीमानी पुरुष आ रहे थे। लम्बा अंगरखा और जड़ाऊ उपत्तीष पहने विनयधर और दण्डधर लोग दौड़-दौड़कर समागत अतिथियों की अभ्यर्थना कर रहे थे। दास-दासी द्वारपाल सब अपनी-अपनी व्यवस्था में व्यस्त थे। धनयंज सेठ शुभ्र परिधान पहने, कण्ठ में रत्नहार धारण किए, मस्तक पर बहुमूल्य उपत्तीष पहने, समागत अतिथियों का स्वागत कर रहे थे, किन्तु उनका हृदय रो रहा था, उनका मुख गम्भीर और नेत्र आर्द्र थे।

एक हजार भिक्षुसंघ के सहित उपाचार्य भदन्त बन्धुगुप्त प्रांगण में पहुंच चुके थे। भिक्षुगण मन्द स्वर में मंत्र पाठ कर रहे थे। उनका सम्मिलित कण्ठ स्वर वातावरण में एक अद्भुत कम्पन उत्पन्न कर रहा था।

विविध वाद्य बज रहे थे। समागत अतिथियों को विनयधर दौड़-दौड़कर उचित आसनों पर बैठा रहे थे।

धनंजय सेठ ने व्यस्त भाव हो इधर-उधर देखा, सामने ही उनका अन्तेवासी विश्वस्त सेवक सुखदास उदास मुंह चुपचाप निश्रेय खड़ा था। सेठ ने कहा—"भणे सुखदास, तनिक देखो तो, कुमार के तैयार होने में कितना विलम्ब है। भिक्षुगण आ गए और अब महाराजाधिराज तथा आचार्य के आने में विलम्ब नहीं है।"

सुखदास ने मालिक की विषादपूर्ण दृष्टि और कंपित स्वर को हृदयंगम किया। वह बिना कोई उत्तर दिये स्वामी के सम्मुख नतमस्तक हो चला गया।

सुखदास सेठ का पुराना नौकर था। उसका इस महाजन के घर में

परिवार के पुरुष की भांति ही आदर-मान था। वह अधेड़ आयु का एक ठिगना, मोटा और गौर वर्ण का पुरुष था। चांद उसकी गंजी थी—चेहरा सदा हास्य से भरा रहता था—पर इस समारोह में उसका मुंह भी भरे हुए बादलों के समान हो रहा था। वह सेठ के दुःख और विवशता को जानता था। उसके पुत्र की मनोदशा भी समझता था। जो कार्य हो रहा था—वह उसका कट्टर विरोधी था। परन्तु वह विवश था।

बौद्धों के पाखण्ड दुराचार और दृष्टिवृत्ति वह जानता था। इन ढोंगी भिक्षुओं की घर्षणा करने का वह कोई अवसर चूकता नहीं था।

महाश्रेष्टि के पुत्र का नाम दिवोदास था। वह बाईस वर्ष का दर्शनीय युवक था। रंग उसका मोती के समान था। उज्ज्वल हीरक पंक्ति-सी उसकी धवल दन्तावलि थी। उत्फुल्ल कमल दल-से उसके नेत्र थे और सघन घन गर्जन-सा उसका कंठस्वर था। वह नवीन वृषभ की भांति चलता था। उसका हास्य जैसे फूल बिखेरता था।

सुखदास ने सेदिपुत्र को गोद खिलाया था। उसकी अपनी कोई संतान न थी। इस निरीह दम्पति ने सेष्टिपुत्र में ही अपना वात्सल्य समर्पित किया था। बालक दिवोदास सेवक सुखदास के घर जाकर उसकी गोद में बैठकर उसके हाथ से उसके घर का रूखा-सूखा भोजन करता और उसी की गोद में सुखदास की कहानियां सुनते-सुनते सो जाता था। श्रेष्टि और उनकी गृहिणी को इसमें आपत्ति न थी। पुत्र के प्रति सुखदास के प्रेम से वे परिचित थे। इसमें उन्हें सुखोपलब्धि होती थी।

इसी प्रकार दिवोदास युवा हो गया। युवा होने पर भी सुखदास के प्रति उसकी आसक्ति गई नहीं। वह उसे पितृव्य कहकर पुकारता था। सुखदास दिवोदास के विवाह की कितनी ही रंगीन कल्पनानएं करता। पति-पत्नी झूठमूठ को ही दिवोदास के विवाह की किसी काल्पनिक बात को लेकर लड़ पड़ते और जब दोनों निर्णय के लिए श्रेष्टि दम्पति के पास जाते, तो श्रेष्टि दम्पति खिलखिलाकर हंस पड़ते थे।

आज हम सब की सुखद भावनाओं पर जैसे तुषारापात हो गया। सुखदास की मर्मकथा को कौन जान सकता था। वह अपने हाहाकार

करते हुए हृदय की पीड़ा को छिपाकर अन्तःपुर की ओर चला गया।

अंतःपुर में परिचारिकाएं दिवोदास को मंत्रपूत जल से स्नान करा रही थीं। पांच भिक्षु मंत्र पाठ कर रहे थे। दिवोदास गम्भीर थे। उनके स्वर्णगात पर केसर का उबटन किया गया था। सुगन्ध से कक्ष भर रहा था। चेरी और सुहागिनें, मंगल गीत गा रही थीं। परिचारिकाओं ने स्नान के बाद दिवोदास को बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनाये। यह देख गृहपत्नी ने आंख में आंसू भरकर कहा—"पुत्र का यह कुछ ही क्षणों का शृंगार है, फिर तो पीत चीवर और भिक्षापात्र!" उसकी आंखों से झरझर अश्रुधार बह चली।

सुखदास ने गृहणी का यह विषादपूर्ण वाक्य सुन लिया। उसने ठण्डी सांस लेकर कहा—"हाय, आज का यह दिन देखने ही को मैं जीवित रहा।" परन्तु शीघ्र ही उसने अपने को सम्हाला। आंख की कोर में आए आंसू पोंछ डाले और आगे बढ़कर कहा—"कुमार, मालिक की आज्ञा है कि महाराजाधिराज और आचार्य के पधारने में अब देर नहीं है, तनिक जल्दी करो।"

कुमार ने स्थिर स्वर में कहा, "पितृव्य पितृ-चरणों में निवेदन कर दो कि यह दास तैयार है।"

सुखदास ने क्षणभर ओस से भीगे हुए शतदल कमल की भांति, सुषमा-सम्पन्न कुमार के मुख की ओर देखा—और 'अच्छा' कहकर वहां से चला गया।

इसी समय महाश्रेष्टि ने आकर दोनों हाथ फैलाकर कहा—"पुत्र, प्यारे पुत्र!"

दिवोदास ने सम्मुख खड़े होकर कहा—"पितृ-चरणों में अभिवादन करता हूं।"

"आयुष्मान् हो, यशस्वी हो, पुत्र।"

"अनुगृहीत हुआ।"

"तो पुत्र तुम तैयार हो?" महाश्रेष्टि ने कम्पित कण्ठ से कहा।

"हां पिताजी।"

"पुत्र, मेरा हृदयल बैठा जा रहा है।"

"पिताजी, यह तो आनन्द का अवसर है।"

"अरे पुत्र, तेरे बिना मैं रहूंगा कैसे? यह सारी पृथ्वी तप्त तवे की भांति अभी से जलती दीख रही है। अब यह सुख वैभव, धन राशि... हाय, मैंने सोचा...किन्तु महाराज की आज्ञा..." सेठ के होंठ कांपे और नेत्रों से आंसू टपक पड़े।

सुखदास ने व्यक्त-भाव से आकर कहा—"स्वामिन् महाराजाधिराज श्री यशोधर्म देव तथा भिक्षुश्रेष्ठ आचार्य बन्धुगुप्त पधार रहे हैं।"

धनंजय सेठ ने आंखें पोंछी और उनकी अभ्यर्थना को दौड़ चले। उन्होंने महाराज और भिक्षुश्रेष्ठ की अभ्यर्थना की और कक्ष में ले आए।

दिवोदास ने भूपात करके साष्टांग प्रणाम किया।

बन्धुगुप्त ने दोनों हाथ ऊंचे कर कहा—"कल्याण, कल्याण!" फिर आगे बढ़कर सेठ से कहा—श्रेष्टिराज, महासंघस्थविर वज्रसिद्ध ने आपका मंगल पूछा है तथा मंजुश्री वज्रतारा देवी का यह गन्धमाल्य दिया है।

धनंजय सेठ ने गन्धमाल्य लेकर मस्तक पर रखा और कहा—"भला महासंघस्थविर प्रसन्न तो हैं?"

"वे सदा सबकी कल्याण कामना में लगे रहते हैं, वे सर्व त्यागी सिद्ध महापुरुष हैं, उन्हें सुख-दुःख नहीं व्यापता।" फिर उन्होंने आगे बढ़कर कुमार के मस्तक पर हाथ धरकर कहा—"धन्य कुमार! तुमने वही किया जो तथागत ने किया था, तुम्हारा जीवन धन्य हुआ।" दिवोदास ने मौनभाव से आचार्य के चरणों में मस्तक नवा दिया। सेठ ने कहा—"आचार्य मैंने अपना कुल-दीपक धर्म के लिए दिया।"

"श्रेष्टिराज, यह संसार का दीपक बनेगा।"

इस समय महाराज ने आगे बढ़कर सेठ के कन्धे पर हाथ धर के कहा—"क्या तुम बहुत दुःखी हो श्रेष्टि?"

"नहीं देव, किन्तु अब यही इच्छा है कि ये महल-अटारी, धन-स्वर्ण सभी संघ की शरण हो जाएं और यह अधम भी संघ के एक कोने में स्थान प्राप्त करे।"

आचार्य ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—"यह बहुत अच्छा विचार है। श्रेष्टिराज, धर्म में आपकी मति बनी रहे। अच्छा अब देर क्यों? अनुष्ठान का मुहुर्त तो सन्निकट है।"

"सब कुछ तैयार है आचार्य।"

"तो चलिए।"

सब लोग चले। आगे-आगे सुखदास मार्ग बताता हुआ, पीछे राजा, आचार्य और धनंजय श्रेष्टि, उनके पीछे कुमार, कुमार के पीछे स्त्रियां मंगल गान करती हुई और उनके पीछे मेहमान।

बाहर आने पर कुमार को सुखपाल पर सवार कराया गया। 16 दण्डधर सुखदास की अध्यक्षता में आगे-आगे चले। उनके पीछे स्त्रियां मंगल गान करती हुई चलीं। उनके पीछे 100 दासियां हाथ में पूजन सामग्री लेकर चलीं। उनके पीछे 1000 भिक्षु—'नमो बुद्धाय, नमो अर्हन्ताय', का उच्चारण करते चले। पीछे हाथियों, घोड़ों, पालकियों के समागत भद्रजन और पैदल।

राह में पुर-स्त्रियों ने अपने सिर के केशों से मार्ग की धूल साफ की, नागरिकों ने पथ पर बहुमूल्य दुशाले बिछाये। कुल-वधुओं ने झरोखों से खिले फूल बखेरे।

विविध वाद्य बज रहे थे, भिक्षु मंत्रपाठ करते चल रहे थे, समारोह संघाराम के विशाल द्वार के सन्मुख आ विस्तृत मैदान में रुक गया। सब कोई पंक्तिबद्ध हो, स्तब्ध भाव से खड़े हो गये। सबकी दृष्टि संघाराम के विशाल सिंह द्वार पर थी और जिसके पट बन्द थे। उन्हीं को खोल कर महासंघस्थविर आने वाले थे।

2

संघाराम का सिंह-द्वार बड़ा विशाल था। यह गगनचुम्बी सात खण्ड की इमारत थी। समारोह के पहुंचते ही संघाराम की बुर्जियों पर से भेरी नाद होने लगा।

संघाराम दुर्ग की भांति सुरक्षित था। उसका द्वार बन्द था। सभी की दृष्टि उस बन्द द्वार पर लगी थी। यह द्वार कभी नहीं खुलता था। केवल उसी समय यह खोला जाता था जब कोई राजा, राजकुमार या वैसी ही कोटि का व्यक्ति दीक्षा ग्रहण कर भिक्षु बनता था। श्रेष्टि-पुत्र को इसी द्वार से प्रवेश होने का सम्मान दिया गया था।

बाजे बज रहे थे। भिक्षुगण मन्द स्वर में 'नमो अर्हन्ताय, नमो बुद्धाय' का पाठ कर रहे थे।

भेरी नाद के साथ ही सिंह द्वार खुला। सोलह भिक्षु पवित्र पात्र लेकर वेदी के दोनों ओर आ खड़े हुए। धीरे-धीरे आचार्य वज्रसिद्ध स्वर्णदण्ड हाथ में ले स्थिर-दृष्टि, सम्मुख किए आगे बढ़े। उनके पीछे पांच महाभिक्षु पवित्र जल का मार्जन करते तथा गंधमाल्य लिये पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाये चले। उन्हें देखते ही सब कोई पृथ्वी पर घुटने टेककर झुक गये। आचार्य सीढ़ी उतर शिष्यों सहित कुमार के पास पहुंचे। उन्होंने मंगल पाठ करके पवित्र जल कुमार के मस्तक पर छिड़का तथा स्वस्ति पाठ करके—'नमो बुद्धाय, नमो अर्हन्ताय' कहा। कुमार सिर झुकाए उकड़ू उनके चरणों में बैठे थे। आचार्य ने कहा—"उठो वत्स और वेदी पर चलो।"

वेदी पर बुद्ध की विशाल प्रतिमा थी। उसी के नीचे कुशासन पर महासंघस्थविर बैठे। सम्मुख कुमार नतजानु बैठे। दीक्षा का प्रारम्भ हुआ।

आचार्य ने खड़े होकर कहा—'कहो वत्स, बुद्ध शरणं गच्छामि।"

दिवोदास ने घुटनों के बल बैठकर—'बुद्ध शरणं गच्छामि' कहा।

आचार्य—संघे शरणं गच्छामि।

दिवोदास—संघे शरण गच्छामि।

3

सुखदास की स्त्री का नाम सुन्दरी था। वह यों तो भली स्त्री थी, परन्तु मिजाज की चिड़चिड़ी थी। सुखदास घर-बार से थोड़ा बेपरवाह था। उसे अपने वेतन की भी चिन्ता न थी। वह नौकरी नहीं बजाता था। सेठ के घर को अपना घर समझता था। उनसे प्रेम करता था।

जिस दिन कुमार दिवोदास की दीक्षा हुई उससे एक दिन प्रथम सुखदास और उसकी पत्नी में खूब वाग्युद्ध हुआ था। वाग्युद्ध का मूल कारण यह था कि सुखदास ने तेईस वर्ष पूर्व सुन्दरी से उसके लिए एक जोड़ा नूपुर बनवा देने का वादा किया था। वे नूपुर उसने अभी तक बनवाकर नहीं दिये थे। तेईस वर्षों के इस अंतर ने सुन्दरी को अधेड़ बना दिया था, प्रायः प्रतिदिन ही वह सुखदास से नूपुर का तकाजा करती थी और प्रतिदिन सुखदास उसे कल अवश्य बनवा देने का वादा कर देता था। इसी प्रकार कल करते-करते तेईस वर्ष बीत चुके थे। कल रात इस मामले ने बहुत गहरा रंग पकड़ा था। सुन्दरी को इसके लिए आंसू गिराने पड़े थे और सुखदास ने प्रणबद्ध होकर वचन दिया था कि यदि कल नूपुर नहीं बनवा दूंगा तो घरबार छोड़कर भिक्षु हो जाऊंगा। सुन्दरी को नूपुर पहनने की बड़ी अभिलाषा थी, वार्धक्य आने से भी वह कम नहीं हुई थी, उसने कहा—"भिक्षु हो जाओगे तो सब कर लूंगी। पर यदि कल न लाए तो देखना मैं कुएं-तालाब में डूब मरूंगी।" सुखदास "अच्छा, अच्छा, समझ गया" कहकर घर से बाहर चला गया था।

आज सुखदास को एक साहस करना पड़ा। देवदास का भिक्षु होना वह सहन न कर सका। बौद्धों के पाखण्ड से वह खूब परिचित था। उसने चुपचाप दिवोदास की सहायता करने के लिए भिक्षु वेश धारण कर लिया। दाढ़ी-मूंछों का सफाया कर लिया और पीत कफनी पहन ली। उसने चुपचाप संघाराम में दिवोदास के पास रहने की ठान ली थी।

सुन्दरी आज बहुत क्रोध में थी। उसने निश्चय किया था। आज जैसे भी हो वह नूपुर बिना मंगाये न रहेगी। जब देखो झूठा बहाना। बहाने ही बहाने में खाने-पहनने के दिन बीत गए। आज वह नहीं या मैं नहीं।

वह बड़बड़ाती हुई बाहरी कक्ष में आई। उसका इरादा कल के युद्ध को फिर से जारी करके पति को परास्त कर डालने का था। कक्ष में देखा—वहां सुखदास के स्थान में कोई भिक्षु पीत कफनी पहने बैठा है। सुखदास की भांति सुन्दरी भी भिक्षुओं को एक आंख नहीं देख सकती थी। उसने भिक्षु को देखते ही आगबबूला होकर कहा—

"यह कौन मूड़ी काटे बैठा है, अरे तू कौन है?"

"यह मैं हूं प्रेम प्यारी जी, तुम्हारा दास सुखदास। पर अब तुम इसे भिक्षु सुखानन्द कहना।"

सुन्दरी का कलेजा धक् से रह गया। उसने घबड़ा कर कहा—

"क्या भांग खा गए हो? मूंछों का एकदम सफाया कर दिया?"

"फिर तुम्हीं इन्हें कोसा करती थीं? कहो अब यह मुंह कैसा लगता है?"

"आग लगे इस मुंह में, यह भिक्षु का बाना क्यों पहना है?"

"तुम्हीं ने कहा था कि साधु होकर घर से निकल जाओ, मैं संतोष कर लूंगी। लो अब जाता हूं।"

सुखदास ने जाने का उपक्रम किया तो सुन्दरी ने रोकर उसका पल्ला पकड़ लिया। रोते-रोते कहा—"हाय हाय, यह क्या करते हो, अरे ठहरो, कहां जाते हो?"

"जाता हूं।"

"अरे मुझे भरी जवानी में छोड़े जाते हो निर्दयी।"

"अरे, वाह रे भरी जवानी। कब तक जवान रहोगी?"

"जाने दो मैं नूपुर नहीं मांगूंगी।"

"अब तुम नूपुर लेकर ही रहना। मुझसे तुम्हारा क्या वास्ता। मैं चला।"

"अरे, लोगो देखो! मैं लुटी। नहीं, मैं नहीं जाने दूंगी" वह रोती हुई लिपट गई।

"तो तब क्यों कहा था?"

"वह तो झूठ-मूठ कहा था।"

"तो प्रेमप्यारी जी, मैं भी झूठ-मूठ का भिक्षु बना हूं, कोई सचमुच थोड़े ही!"

"अरे! यह क्या बात है?"

"किसी से कहना नहीं, गुप-चुप की बात है।"

"अरे तो तुम झूठ-मूठ क्यों मूड़ मुड़ा बैठे?"

"तब क्या करता, मालिक की अक्ल तो पिलपिली हो गई। जवान बेटे को बैठे-बिठाए मूड़ मुड़ाकर घर से निकाल दिया। भिक्षु बड़े पाजी होते हैं और वह सबका गुरु-घंटाल पूरा भेड़िया है। उसके दांत सेठ की दौलत पर हैं। भैया पर न जाने कैसी बीते, मेरा उनके साथ रहना बहुत जरूरी है, समझीं प्रेम प्यारी जी!"

"पर मेरी क्या गत होगी, यह भी सोचा, नूपुर नहीं थे तुम तो थे। इसी से संतोष था, अब तो दूर हो जाओगे। आज झूठ-मूठ के साधु बने हो, कल सचमुच के बनने में क्या देर लगेगी।"

"नहीं प्रेमप्यारी जी, कहीं ऐसा भी हो सकता है? तुम्हें छोड़ कर भला सुखदास की गत कहां है। पर भैया की सेवा करना भी मेरा धर्म है। लो अब मैं जाता हूं।"

"तो फिर मुझे क्या कहते हो?"

"बस इस झमेले से बेबाक हुआ कि मुझे नूपुर बनवाने हैं।"

"भाड़ में जाय नूपुर, मेरे लिए तुम बने रहो।"

"मैं तो पक्का बना बनाया हूं, चिन्ता मत करो।"

"फिर कब आओगे?"

"रोज ही आयेंगे, आने में क्या है। सभी भिक्षु भिक्षा के लिए आते हैं। हम यहीं मिला करेंगे। अच्छा साध्वी, तेरा कल्याण हो, यह भिक्षु धर्मानंद चला।"

"हाय-हाय निर्मोही!"

"पर तनिक तो ठहरो!"

"अब नहीं, देखूं भैया को कहां कैसे रखा गया है।"

"तो जाओ फिर।"

"जाता हूं।"

धर्मदास धीरे-धीरे घर से बाहर चला गया। सुन्दरी आंखों में आंसू भरे एकटक देखती रही।

4

प्रातःकाल का समय था। विहार का सिद्धि-द्वार अभी खुला था—बहुत से गृहस्थ नागरिक देवी वज्रतारा के दर्शन करने आ जा रहे थे। भिक्षुगण इधर-उधर घूम रहे थे। कोई सूत्र धोख रहा था, कोई चीवर धो रहा था, कोई स्थान शुद्धि में लगा था। सुखदास भिक्षु-वेश में रामपद गुनगुनाता दिवोदास की खोज में इधर-उधर घूम रहा था। पर दिवोदास का कहीं पता नहीं लग रहा था।

एक भिक्षु ने उसे टोककर कहा—"मूर्ख, विहार में गाता है? नहीं जानता, गाना विलास, भिक्षु को मंत्रपाठ करना चाहिए।"

सुखदास ने आंखें कपाल पर चढ़ाकर कहा—मुझे मूर्ख कहने वाला ही मूर्ख है, अरे, मैं त्रिगुण सूत्र का पाठ कर रहा हूं, जानता है?"

'त्रिगुण सूत्र?"

"हां हां, पर वह कण्ठ से उतरता नहीं है। जानते हो त्रिगुण सूत्र?"

"नहीं जानता भदंत, तुम कौन यान में हो?"

"बात मत करो, सूत्र भूला जा रहा है" सुखदास गुनगुनाता हुआ फिर एक ओर को चल दिया। कुछ दूर जाकर उसने आप-ही-आप भुनभुनाते हुए कहा—"वाह, क्या-क्या सफाचट खोपड़ियां यहां जमा हैं, जी चाहता है दिन भर इन्हें चपतियाता रहूं। पर अपने राम को, कुमार को टटोलना है। पता नहीं इस समुद्र से कैसे वह मोती ढूंढा जायेगा। वह एक बूढ़ा भिक्षु जा रहा है, पुराना पापी दीख पड़ता है। इसी से पूछूं।' सुखदास ने आगे बढ़कर कहा—"भदंत, नमो बुद्धाय।"

"नमो बुद्धाय"

"भदंत, कह सकते हो, भिक्षु धर्मानुज कहां है?"

"तुम मूर्ख प्रतीत होते हो। नहीं जानते वह महातामस में आचार्य की आज्ञा से प्रायश्चित्त कर रहा है।"

"यह महातामस कहां है भदंत?"

"शान्तं पापं; अरे, महातामस में तुम जाओगे? जानते हो वहां जो जाता है उसका सिर कटकर गिर पड़ता है। वहां चौसठ सहस्त्र डाकिनियों का पहरा है।"

"ओहो, हो, तो भदंत, किस अपराध में भिक्षु धर्मानन्द को महातामस दिया गया है?" इतने में दो-तीन भिक्षु वहां और आ गये। उन्होंने सुखदास की अंतिम बात सुन ली। सुनकर वे बोल उठे—"मत कहो, मत कहो, कहने से पाप लगेगा।"

उसी समय आचार्य बन्धुगुप्त उधर आ निकले। आचार्य ने कहा—

"तुम लोग यहां क्या गोष्ठी कर रहे हो?"

'समझ गया, तुम लोगों ने महानिर्वाण सुत्त धोखा नहीं।"

"आचार्य, यह भिक्षु पूछता है..."

"क्या?"

"पाप, पाप, भारी पाप।"

"कैसे कहें, पाप लगेगा आचार्य।"

"कहो, मैंने पवित्र वचनों से तुम्हें पापमुक्त किया।"

"तब सुनिए, वह जो नया भिक्षु दिवोदास..."

"धर्मानुज कहो। वह तो प्रायश्चित्त में है? वह क्रक्छ्रचान्द्रायण कर रहा है।"

"जी हां।"

"महातामस में, वह चार मास में दोषमुक्त होगा।"

"किन्तु यह भिक्षु कहता है कि मैं वहां जाऊंगा।"

"क्यों रे?" आचार्य ने आंखें निकाल कर सुखदास की ओर देखा।

सुखदास ने बद्धांजलि कहा—"किन्तु आचार्य, भिक्षु धर्मानुज ने क्या अपराध किया?"

"अपराध? अरे तू उसे केवल अपराध ही कहता है?"

"आचार्य, मेरा अभिप्राय पाप से है।"

"महापाप किया है उसने, उसका मन भोग-वासना में लिप्त है, वह कहता है, उस पर बलात्कार हुआ है—मन की शुद्धि के लिए संघस्थविर

ने उसे चार मास का क्रच्छ्रचान्द्रायण व्रत का आदेश दिया है।"

"कैसी मन की शुद्धि आचार्य?"

"अरे! तू कैसा भिक्षु है, विहार के साधारण धर्म को भी नहीं जानता!"

"किन्तु इसी बात में इतना दोष?"

"बुद्धं शरणं। तू निरा मूर्ख है। तुझे भी प्रायश्चित्त करना होगा।"

"क्या गरम सीसा पीना होगा?"

"ठीक नहीं कह सकता, महासंघस्थविर को सूचना देनी होगी। विधान पिटक में तेरे लिए दस हजार प्रायश्चित्त हैं।"

"बाप रे, दस हजार?"

"जाता हूं, संघस्थविर को सूचना दे दूं। देखता हूं विहार अनाचार का केन्द्र बनता जा रहा है।"

आचार्य बड़बड़ाते एक ओर चल दिये। सुखदास मुंह बाए खड़ा रह गया।

5

वज्रतारादेवी के मन्दिर के भीतरी आलिन्द में महासंघस्थविर वज्रसिद्ध कुशासन पर बैठे थे। सम्मुख वज्रतारा की स्वर्ण प्रतिमा थी। प्रतिमा पूरे कद की थी, उसके सिर पर रत्नजड़ित मुकुट था। हाथ में हीरक दण्ड था। मूर्ति सोने के अठपहल सिंहासन पर पद्मासन से बैठी थी। मूर्ति के पीछे पांच कोण का यंत्र था जिस पर नामाचार के अंक अंकित थे। मूर्ति सर्वथा दिगम्बर थी।

वज्रसिद्ध के आगे विधान पुस्तक खुली पड़ी थी। वे उसमें से मंत्र पढ़ते जाते तथा पूजा विधि बोलते जाते। बारह भिक्षु भिन्न-भिन्न पात्र हाथ में लिये, पूजा विधि सम्पन्न कर रहे थे। बहुत से नागरिक भक्ति-भाव से करबद्ध पीछे बैठे थे। मंदिर का घंटा निरन्तर बज रहा था। आचार्य पूजा-विधि तो कर रहे थे परन्तु उनका मन वहां नहीं था। वे बीच-बीच में व्यग्र भाव से इधर-उधर देख लेते थे।

इसी समय महानन्द ने मन्दिर में प्रवेश किया। वह चौकन्ना हो इधर-उधर देखता हुआ धीरे-धीरे भीतर की ओर अग्रसर हुआ और संघस्थविर के पीछे वाली खिड़की में जा खड़ा हुआ। किसी का ध्यान उधर नहीं गया। परन्तु वज्रसिद्ध को उसका आभास मिल गया। फिर भी उन्होंने आंख फेरकर उधर देखा नहीं। हां, कुछ संतोष की भावना उनके चित्त में अवश्य उत्पन्न हो गई।

महानन्द ने देखा—पूजा में सब सफेद फूल काम में लाये जा रहे हैं। उसने अवसर पाकर एक लाल फूल वज्रसिद्ध के आगे फेंक दिया। महानन्द की ओर किसी की दृष्टि न थी। उसके इस काम को भी किसी ने नहीं देखा। ऐसी ही उसकी मान्यता भी थी। परन्तु वास्तव में एक पुरुष की आंखों से वह ओझल नहीं हो सका। और वह सुखदास था।

सुखदास ने उसकी चाल और रंग-ढंग देखकर ही पहचान लिया था कि वह कोई रहस्यपूर्ण पुरुष है, इस प्रकार अपने को छिपाकर तथा

चौकन्ने होकर चलने का दूसरा कारण हो भी क्या सकता था। अतः सुखदास ने छिपकर उसका पीछा किया और यहां खंभे की ओट में खड़ा हो उसकी गतिविधि देखने लगा।

लाल फूल देखते ही आचार्य चौंक उठे। मंत्र पाठ के स्थान पर उनके मुंह से निकल पड़ा—"अरे! यह तो युद्ध का संकेत है।" उन्होंने सबकी नजर बचाकर एक बार महानन्द की ओर देखा। एक कुटिल हास्य उसके होंठों पर खेल गया। उसने फूल के चार टुकड़े कर उत्तर दिशा में फेंक दिए। उसके हिलते हुए होंठों से लोगों ने समझा, यह भी पूजा विधि ही होगी।

थोड़ी ही देर में एक भिक्षु कुछ वस्तु उठाने के बहाने उनके कान के पास झुक गया। आचार्य ने उसके कान में कहा—"देख, एक आदमी उत्तर तोरण के चतुर्थ द्वार पर खड़ा है। उसे गुप्त राह से पीछे वाली गुफा में ले जा।"

भिक्षु नमन करके चला गया। संघस्थविर ने आचार्य बन्धुगुप्त को संकेत से पास बुलाकर कहा—"तुम यहां पूजन विधि सम्पन्न करो मैं अभी जाकर जाप में बैठता हूं। देखना मेरे जाप में विघ्न न हो।"

बन्धुगुप्त ने सहमति सूचक संकेत किया। संघस्थिवर उठकर एक ओर चल दिए। बन्धुगुप्त आसन पर बैठकर पूजन विधि सम्पन्न करने लगे।

लोगों ने ससम्भ्रम आचार्य पाद को मार्ग दिया। वे भूमि में झुक गए। आचार्य ने मुस्कराकर सबको दोनों हाथ उठा, कल्याण-कल्याण का आशीर्वाद दिया।

जिस भिक्षु को आचार्य ने महानन्द को ले जाने का आदेश दिया था—उसका सुखदास ने पीछा किया। जब वह महानन्द को गुप्त राह से ले चला तो सुखानन्द अत्यन्त सावधानी से उनके पीछे ही पीछे चला। अन्त में एक छोटे से द्वार को पार करके एक अंधेरे अलिन्द में जा पहुंचे। वहां घृत के दीपक जल रहे थे। द्वार को पीछे से बन्द करने की सावधानी नहीं की गई, इससे सुखदास को अनुगम करने में बाधा नहीं हुई।

वज्रसिद्ध ने आते ही कहा—"क्या समाचार है, महानन्द! तुमने तो बड़ी प्रतीक्षा कराई।"

"आचार्य, मैंने एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोया।"

"तो समाचार कह।"

"काशीराज के दरबार में हमारी चाल चल गई है।" उसने आंख से संकेत करके कहा।

"तो तुम सीधे वाराणसी से ही आ रहे हो।"

"महाराज काशीराज जो यज्ञ कर रहे हैं उसमें आपको निमंत्रित करने दूत आ रहा है।"

"वह तो है, परन्तु महाराज ने भी कुछ कहा?"

"जी हां, महाराज ने कहा है कि (कान में झुककर) महाराज तो आचार्य की कृपा पर निर्भर हैं।"

वज्रसिद्ध हंस पड़े। हंसकर बोले—"समझा, समझा, अरे, दया तो हमारा धर्म ही है, परन्तु धूर्त पापेश्वर का वह पाखण्डी पुजारी?"

"सिद्धेश्वर? वह आचार्य पद के विमुख नहीं है।"

"तब आसानी से काशीराज का नाश किया जा सकता है और इस ब्राह्मण के मंदिर को भी लूटा जा सकता है। जानते हो कितनी संपदा है उस मंदिर में? अरे, सहस्र-सहस्र वर्ष की संचित संपदा है।"

"तो प्रभु, सिद्धेश्वर महाप्रभु आपसे बाहर नहीं हैं।"

"तो वाराणसी पर सद्धर्मियों का अधिकार करने का जो मैं स्वप्न देख रहा हूं वह अब पूर्ण होगा! इधर श्रेष्टि धनंजय का पुत्र दिवोदास के भिक्षु हो जाने से सेठ की अटूट संपदा हमारे हाथ में आई समझो। इतने से तो हमें पचास हजार सैन्य दल और शस्त्र जुटाना सहज हो जायेगा?"

"अरे, तो क्या सेठ के पुत्र ने दीक्षा ले ली?"

"नहीं तो क्या?"

"किन्तु आचार्य, वह धोखा दे सकता है, मैं भली-भांति जानता हूं, उसे सद्धर्म पर तनिक भी श्रद्धा नहीं है।"

"यह क्या मैं नहीं जानता? इसी से मैंने उसे 4 मास के लिए महातामस में डाल दिया है। तब तो काशीराज और उदत्तपुरी के महाराज ही न रहेंगे।"

"परन्तु आचार्य, सेठ यह सुनेगा तो वह महाराज को अवश्य उभारेगा। यह ठीक नहीं हुआ।"

"बहुत ठीक हुआ।"

इसी समय एक भिक्षु ने आकर बद्धांजलि हो आचार्य से कहा—"प्रभु, काशीराज के मंत्री श्री चरणों के दर्शन की प्रार्थना करते हैं।"

वज्रसिद्ध ने प्रसन्न मुद्रा से महानन्द की ओर देखते हुए कहा—

"भद्र महानन्द, तुम महामंत्री को आदरपूर्वक तीसरे अलिन्द में बैठाओ और कहो कि आचार्य पाद त्रिपटिक सूत्र का पाठ कर रहे हैं, निवृत्त होते ही दर्शन देंगे।"

महानन्द 'जो आज्ञा आचार्य' कहकर चला गया।

वज्रसिद्ध प्रसन्न मुद्रा से कक्ष में टहलते हुए आप ही आप कहने लगा—बहुत अच्छा हुआ—सब कुछ आप ही आप ठीक होता जा रहा है। यदि काशीराज लिच्छविराजकुल से संधि कर लें और अधर्मी हो जायें तथा धूर्त पापेश्वर की सब संपत्ति संघ को मिल जाये तो ठीक है, नहीं तो इनका सर्वनाश हो। यदि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जाये तो फिर एक बार सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में वज्रयान का साम्राज्य हो जाये।

6

काशी के महामात्य का नाम शिव शर्मा था। ये एक वृद्ध विद्वान् शैव ब्राह्मण थे। राजनीति और धर्मनीति में बड़े पण्डित थे। काशीराज वंश की इन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि तथा नीति से बहुत बार रक्षा की थी। इनका वैभव भी राजा से कम न था। वह समय ही ऐसा था। राजा और मंत्री का गुट, क्षत्रिय और ब्राह्मण का गुट था। ये ब्राह्मण ही इन राजाओं की सत्ता को अखण्ड बनाये रखते थे। राजा को ईश्वर का आंशिक अवतार बताते और उसकी सभी उचित-अनुचित आज्ञा को ईश्वरीय विधान के समान सिर झुकाकर मानना सब प्रजा का धर्म बताते थे। इसके बदले इन्हें पुरोहिताई तथा मंत्री के अधिकार प्राप्त हुए थे। राजा लोग इन ब्राह्मण मंत्रियों पर अपने भाई-बन्धु से भी अधिक विश्वास रखते थे। इनका वैभव—महल, ऊपरी ठाट-बाट—राजा से किसी अंश में कम न होता था। ये ही मंत्री राजा की धर्मनीति और राजनीति के संचालक थे।

"आमात्यवर, काशीराज कुशल से तो हैं?"

"आचार्य के अनुग्रह से सब कुशल है।"

"मैं नित्य देवी व वज्रतारा से उनकी मंगल कामना करता हूं। हां, महाराज यज्ञ कर रहे हैं?"

"उसी में पधारने के लिए मैं आपको आमंत्रित करने आया हूं। महाराज ने सांजलि प्रार्थना की है कि आचार्य भिक्षु संघ सहित पधारें।"

"परन्तु महामात्य, यज्ञ में पशु-वध होगा, गवालम्भन होगा, यह सब तो सद्धर्म के विपरीत है।"

"आचार्य, प्रत्येक धर्म की एक परिपाटी है। उसकी आलोचना से क्या लाभ? काशीराज आप पर श्रद्धा रखते हैं, इसी से उन्होंने आपको स्मरण किया है। फिर परस्पर धार्मिक सहिष्णुता तो इसी प्रकार पढ़ सकती है।"

"यह तो ठीक है, परन्तु काशीराज तो कभी इधर आये ही नहीं।"

"तो क्या हुआ, मैं उनका प्रतिनिधि देवी वज्रतारा का प्रसाद लेने आया हूं।"

"साधु-साधु, मंत्रीवर देवी वज्रतारा का प्रसाद लो" आचार्य ने व्यग्र भाव से इधर-उधर देखा—महानंद का अभिप्राय समझ बद्धांजलि पास आया। आचार्य ने कहा—"भद्र, महानन्द आमात्यराज को देवी का प्रसाद दो।"

महानन्द ने 'जो आज्ञा!' कह, एक भिक्षु को संकेत किया। भिक्षु ने प्रसाद मंत्री को अर्पित किया।

प्रसाद लेकर मंत्री ने कहा—"अनुगृहीत हुआ आचार्य।"

"मंत्रीवर, आपकी सद्धर्म में ऐसी ही श्रद्धा बनी रहे।"

"आचार्य काशीराज आप ही के अनुग्रह पर निर्भर हैं।"

"तो आमात्यराज, मैं उनकी कल्याण कामना से बाहर नहीं हूं।"

"ऐसी ही हमारी भावना है, क्या मैं कुछ निवेदन करूं?"

"क्यों नहीं?"

"क्या लिच्छविराज काशी पर अभियान करना चाहते हैं?"

"ऐसा क्यों कहते हैं मंत्रीवर।"

"मुझे विश्वस्त सूत्र से पता लगा है।"

"तो उस राजनीति को मैं क्या जानूं?"

"लिच्छविराज तो आपके अनुगत हैं आचार्य।"

"मंत्रीवर, मैं केवल अपने संघ का आचार्य हूं, लिच्छविराज का मंत्री नहीं।"

"परन्तु आचार्य, वे आपकी बात नहीं टालेंगे।"

"क्या आप यह चाहते हैं कि मैं लिच्छविराज से काशीराज के लिए अनुरोध करूं?"

"आपकी इच्छा।"

"यह आप चाहते हैं?"

"नहीं आमात्य।"

"क्या काशीराज ने ऐसा कोई लेख आपके द्वारा भेजा है?"

"यह है आचार्य?"

लेख पढ़कर कुछ देर बाद वज्रसिद्ध ने गम्भीर मुद्रा से कहा—

"तो मैं काशीराज का अतिथि बनूंगा।"

"काशीराज अनुगृहीत होंगे आचार्य।"

"मैं यज्ञ में आऊंगा।"

"अनुग्रह।"

"तो महामात्य, एक बात है, लिच्छविराज का आक्रमण रोक दिया जायेगा पर लिच्छविराज का अनुरोध काशीराज को मानना पड़ेगा।"

"वह क्या?"

"यह मैं अभी कैसे कहूं।"

"तब?"

"क्या काशीराज मुझ पर निर्भर नहीं?"

"क्यों नहीं आचार्य।"

"तब उनकी कल्याण कामना से मैं जैसा ठीक समझूंगा करूंगा?"

"ऐसा ही सही आचार्य, काशीराज तो आपकी शरण में है।"

"काशीराज का कल्याण हो।'

मंत्री ने अभिवादन किया और चले गए। आचार्य वज्रसिद्ध बड़ी देर तक कुछ सोचते रहे। इसमें संदेह नहीं कि सुखदास ने यह सब बात अक्षरशः सुन ली।

7

मंत्री के जाते ही महानन्द ने सम्मुख आकर कहा—

"अब आचार्य की मुझे क्या आज्ञा है?"

"वाराणसी चलना होगा भद्र, साथ कौन जायेगा?"

"क्या मैं?"

"नहीं, तुम्हें मेरा संदेश लेकर अभी लिच्छविराज के पास जाना होगा।"

"तब?"

"धर्मानुज और ग्यारह, कुल बारह भिक्षु।"

"धर्मानन्द क्यों?"

"उसमें कारण है, उसे मैं यहां अकेला नहीं छोड़ूंगा। सम्भव है यह ही युद्ध क्षेत्र हो जाये।"

"यह भी ठीक है, परन्तु उसका प्रायश्चित्त!"

"उसे मैं अपने पवित्र वचनों से पवित्र कर दूंगा।"

महानन्द ने हंसकर कहा—"आप सर्वशक्तिमान पुरुष हैं।"

वज्रसिद्ध भी हंस दिये। उन्होंने कहा—"ग्यारह शिष्य छांटो, मैं धर्मानुज को देखता हूं।"

"जैसी आचार्य की आज्ञा।"

अंधेरे और गन्दे तलग्रह में धर्मानुज चटाई पर बैठा कुछ सोच रहा था। वह सोच रहा था—"जीवन के प्रभात में, महल-अटारी, सुख-साज, त्यागकर क्या पाया। यह गंदी, घृणित और अंधेरी कोठरी?" बाहर कैसा सुन्दर संसार है, धूप खिल रही है। मन्द पवन के झोंके चल रहे हैं। पक्षी भांति-भांति के गीत गा रहे हैं। परन्तु धर्म के लिए इन सबको त्यागना पड़ता है। यह धर्म क्या वस्तु है? यह तो मनुष्य का कट्टर शत्रु दीख पड़ता है।"

इसी समय सुखदास ने वहां पहुंचकर झरोखे से झांक कर देखा। भीतर अंधेरे में वह कुछ देख न सका। परन्तु उसे दिवोदास के उद्गार

कुछ सुनाई दिये। उसका हृदय क्रोध और दुःख से भर गया।

उसने बाहर से खटका किया।

धर्मानुज ने खिड़की की ओर मुंह करके कहा—"कौन है भाई।"

"भैयाजी, क्या हाल है? अभी आत्मा पवित्र हुई या नहीं?"

"धीरे-धीरे हो रही है, किन्तु तुम कौन?"

"मैं...मैं! पितृव्य?"

"क्या सुखदास? अरे, तुम यहां कहां?"

"चुप! मैं सुखानन्द भिक्षु हूं, तुम्हारी कल्याण कामना से यहां आया हूं।"

"उसके लिए तो संघस्थविर ही यथेष्ट थे, इस अंध नरक में मेरी यथेष्ट कल्याण कामना हो रही है।"

"आज इस नरक से तुम्हारा उद्धार होगा, आशीर्वाद देता हूं!"

"किन्तु अभी तो प्रायश्चित्त की अवधि भी पूरी नहीं हुई है।"

"तो इससे क्या? भिक्षु सुखानन्द का आशीर्वाद है यह।"

"पहेली मत बुझाओ यहां, बात जो है वह कहो।"

"तो सुनो, संघस्थविर जा रहे हैं काशी, उनके साथ बारह भिक्षु जायेंगे। उनमें तुम्हें भी चुना गया है।"

"काशी क्यों जा रहे हैं आचार्य?"

"समझ सकोगे? काशीराज और अपने महाराज का सर्वनाश करने का षड्यंत्र रचने।"

"सर्वत्यागी भिक्षुओं को इससे क्या मतलब?"

महासंघस्थविर वज्रसिद्ध त्यागी भिक्षु नहीं हैं। वे राजमुकुटों के मिटाने और बनाने वाले हैं।"

"फिर यह धर्म ढोंग क्यों?"

"यही उनका हथियार है, इसी से उनकी विजय होती है।"

"और पवित्र धर्म का विस्तार?"

"वह सब पाखण्ड है।"

"तब कहां जाता? जहां गाय वहां बछड़ा।"

"समय क्या है? इस अंधकार में तो दिन-रात का पता ही नहीं चलता।"

"पूर्व दिशा में लाली आ गई है, सूर्योदय होने ही वाला है किन्तु संघस्थविर आ रहे हैं। मैं चलता हूं।"

"संघस्थविर इस समय क्यों आ रहे हैं?"

"तुम्हें पाप मुक्त करने, आज का मनोरम सूर्योदय तुम देख सकोगे—यह भिक्षु सुखानन्द का आशीर्वाद है।"

सुखानन्द का मुंह खिड़की पर से लुप्त हो गया। इसी समय एक चीत्कार के साथ भूगर्भ का मुख्य द्वार खुला। आचार्य वज्रसिद्ध ने प्रवेश किया। उनके पीछे नंगी तलवार हाथ में लिये महानन्द था। आचार्य ने कहा—

"वत्स धर्मानुज, क्या तुम जाग रहे हो?"

"हां आचार्य, अभिवादन करता हूं।"

"तुम्हारा कल्याण हो, धर्म में तुम्हारी सद्‌गति रहे। आओ मैं तुम्हें पाप मुक्त करूं।"

उन्होंने मंत्र-पाठ कर पवित्र जल उसके मस्तक पर छिड़का और कहा—"तुम पाप मुक्त हो गए, अब बाहर आओ।"

"यह क्या आचार्य, अभी तो प्रायश्चित्त काल पूरा भी नहीं हुआ?"

"मैंने तुम्हें पवित्र वचन से शुद्ध कर दिया। प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं रही।"

"नहीं आचार्य, मैं पूरा प्रायश्चित्त करूंगा।"

"वत्स, तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

"आपकी आज्ञा से धर्म की आज्ञा बढ़कर है।"

"हमीं धर्म को बनाने वाले हैं धर्मानुज, हमारी आज्ञा ही सबसे बढ़कर है।"

"आचार्य, मैंने बड़ा पातक किया है।"

"कौन-सा पातक, वत्स?"

"मैंने सुन्दर संसार को त्याग दिया, यौवन का तिरस्कार किया, ऐश्वर्य को ठोकर मारी, उस सौभाग्य को कुचल दिया जो लाखों मनुष्यों में एक पुरुष को मिलता है।"

"शान्तं पापं। यह अधर्म नहीं धर्म किया। तथागत ने भी यही किया था पुत्र?"

"उनके हृदय में त्याग था। वे महापुरुष थे। किन्तु मैं तो एक साधारण जन हूं। मैं त्यागी नहीं हूं।"

"संयम और अभ्यास से तुम वैसे बन जाओगे।"

"यह बलात् संयम तो बलात् व्यभिचार से भी अधिक भयानक है।"

"यह तुम्हारे विकृत मस्तिष्क का प्रभाव है, वत्स!"

"आपके इन धर्म-सूत्रों में, इन विधानों में, इस पूजा-पाठ के पाखण्ड में, इन आडम्बरों में मुझे तो कहीं भी संयम और शान्ति नहीं दीखती। न धर्म दीखता है। धर्म का एक कण भी नहीं दीखता।"

"पुत्र, सद्धर्म से विद्रोह मत करो, उसे बुरा मत कहो।"

"आचार्य, आप यदि जीवन को स्वाभाविक गति नहीं दे सकते तो संसार को सद्धर्म का कैसे संदेश दे सकते हैं?"

"पुत्र, अभी तुम इन सब धर्म की जटिल बातों को न समझ सकोगे। मेरी आज्ञा का पालन करो। इस महातामस से बाहर आओ और स्नान कर पवित्र हो देवी वज्रतारा का पूजन करो, तुम्हें मैंने अपने बारह प्रधान शिष्यों का प्रमुख बनाया है। हम वाराणसी चल रहे हैं।"

आचार्य ने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वे बाहर निकले। सम्मुख होकर सुखानन्द ने साष्टांग दण्डवत की। आचार्य ने कहा—"अरे भिक्षु! जा उस धर्मानुज को महा अन्धतामस से बाहर कर, उसे स्नान करा, शुद्ध वस्त्र दे और देवी के मन्दिर में ले आ।"

सुखदास ने मन की हंसी रोककर कहा—"जो आज्ञा आचार्य।"

उसने तामस में प्रविष्ट होकर कहा—"भैया, जो कुछ करना-धरना हो पीछे करना। अभी इस नरक से बाहर निकलो और इन पाखण्डियों के भण्डाफोड़ की व्यवस्था करो!"

दिवोदास ने और विरोध नहीं किया। वह सुखदास की बांह का सहारा ले धीरे-धीरे महातामस से बाहर आया। एक बार फिर सुन्दर संसार से उसका संपर्क स्थापित हुआ।

8

वाराणसी शैवधर्म का पुरातन मूल स्थान है। धूर्त पापेश्वर का मन्दिर बड़ा विशाल था। उसका स्वर्ण-कलश गगनचुम्बी था। सम्पूर्ण मन्दिर श्वेत संगमरमर का बना था। मन्दिर में बहुत पार्श्वद पुजारी, देवदासी और वेदपाठी ब्राह्मण रहते थे। मनुष्य कद की शिव-मूर्ति ताण्डवय मुद्रा में थी। वह ठोस स्वर्ण की थी। मन्दिर का महात्म्य अधिक था, वहां देश-विदेश के यात्रियों का तांता-सा लगा रहता था।

इस बार काशीराज ने यज्ञ की घोषणा की थी, इससे देश-विदेश के भावुक जन, बिना बुलाये काशी में आ जुटे थे। अनेक नरपतियों को निमंत्रित किया हुआ था और अनेक सेठ-साहूकार अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को बेचने के लिए आ जुटे थे।

मन्दिर में भव्य समारोह था। सहस्रों घृत-दीप जल रहे थे। महाकण्ठ के घोष से कानों के पर्दे फटे जाते थे। जनरव भी उसी में मिल गया था। वीणा, मृदंग आदि वाद्य बज रहे थे।

मंदिर के प्रधान पुजारी का नाम सिद्धेश्वर था—वह कद में ठिगना, कृष्ण-काय अधेड़ वय का पुरुष था। उसका मुंह खिचड़ी दाढ़ी से ढका था। शरीर बलिष्ठ था, वह सदैव भगवा कौशेय धारण किये रहता था। वह वज्रसिद्ध और काशीराज के साथ स्वर्ण सिंहासन पर बैठा था। बड़े-बड़े पात्रों में धूप जल रही थी, जिससे सारा ही वातावरण सुरभित हो रहा था। जड़ाऊ मसालों के प्रकाश में मन्दिर के खम्भों पर जड़े हुए रत्नमणि चमक रहे थे।

पूजा विधि प्रारम्भ हुई। सोलह पुजारियों ने पूजा आरती लिये, मंत्र पाठ करते हुए प्रवेश किया। सब नंगे पैर, नंगे सिर, नंगे शरीर, कमर में पीताम्बर, कन्धे पर श्वेत जनेऊ, सिर पर बड़ी चोटी। चार के हाथ में जगमगाते आरती के थाल थे। चार के हाथ में गंगाजल के स्वर्ण पात्र थे। चार के हाथ में धूप, दीप और चार के हाथ में नाना विधि

फूलों से भरे थाल थे। आग-धतूरा और विल्वपत्र भी उनमें थे।

साफ-साफ ऊंचे स्वर में मंत्र होने लगा—

कुछ काल तक मंत्र पाठ उच्च भैरवनाद के साथ हुआ। सैकड़ों कण्ठ-स्वरों ने मिलकर पाठ को गौरव दिया। मंत्र पाठ समाप्त होते ही देवदासियों ने नृत्य किया। सब रंग-बिरंगी पोशाक पहने थीं। सिर पर मोतियों की मांग, कान में जड़ाऊ त्राटक, छाती पर जड़ाऊ हार, कटि प्रदेश पर रक्त पट्ट, पीठ पर लहराता उत्तरीय। हाथ में डमरू और झांझ।

सैकड़ों देवदासियों के नृत्य से दर्शक विमुग्ध हो गये। आचार्य वज्रसिद्ध भी यह निषिद्ध दृश्य देखकर प्रसन्न हो रहे थे। एकाएक नृत्य रुक गया। सब नर्तिकाएं दो विभागों में विभक्त हो गईं। मंजुघोषा धीरे-धीरे मंच पर आई। उसके सिर पर उत्कृष्ट जड़ाऊ मुकुट था। शरीर पर मोतियों का शृंगार था। अब केवल डमरूवाद होने लगा और मंजुघोषा ने ताण्डव नृत्य बिल्कुल शैव पद्धति पर करना प्रारम्भ किया। वातावरण एक विभिन्न कम्पन से भर गया। मंजुघोषा की नृत्य गति बढ़ती ही गई—वह तीव्र से तीव्रतर होती गई। उपस्थित समुदाय स्तब्ध रह गया। उस षोडशी बाला का भव्य रूप, अप्रतिम कला, दिव्य नृत्य और उसका भावावेश इन सबने, उपस्थित जनों को भाव विमोहित कर दिया। नृत्य के अन्त में मंजुघोषा शिव-मूर्ति के समक्ष पृथ्वी में प्रणिपात करने को गिर गई। सिद्धेश्वर ने कहा—"उठो मंजु, प्रसाद ग्रहण करो।"

मंजु धीरे-धीरे उठी। उसने पुजारी से प्रसाद ग्रहण किया।

वज्रसिद्ध अब तक जड़ बैठे थे। अब वे बोल उठे—"यह लड़की साक्षात् वज्रतारा प्रतीत होती है। अरे धर्मानुज, यह देवी वज्रतारा का गन्धमाल्य इस दासी को देकर कृतार्थ करें।"

उन्होंने कण्ठ से लाल फूलों की एक माला उतार कर आगे बढ़ाई, परन्तु धर्मानुज उस देवदासी के रूपसागर में डूब रहा था। उसने आचार्य की बात न सुनी। दुबारा पुकारने पर वह चौंककर उठा—उसने माला दोनों हाथों में ले ली। मंजुघोषा के निकट पहुंचकर उसने कांपते

हाथों से वह माला उस देवदासी के कण्ठ में डालनी चाही। पर मंजु ने अपने दोनों हाथ उसके लिए फैला दिये। दोनों के नेत्र मिले। दोनों बाहर की सुध भूल कर, वैसे-के-वैसे ही खड़े रह गये। दोनों के नेत्र चमक उठे, उनमें एक लाज व्याप गई, होंठ कांपने लगे और शरीर कंटकित हो गया। दिवोदास ने साहस करके माला मंजु के कण्ठ में डाल दी। मंजु ठगी-सी खड़ी रह गई। दिवोदास अपने स्थान पर लौट गया। धीरे-धीरे मंजुघोषा अपने आवास पर लौट गई। दिवोदास प्यासी आंखों से उसकी मनोहर मूर्ति को देखता रहा। महाराज, महाआचार्य और पुजारी तथा सब लोग उठकर अपने-अपने स्थानों को चल दिये। दिवोदास भी घायल पक्षी की भांति लड़खड़ाता हुआ अपने आवास पर पहुंचा। उसकी भूख-प्यास जाती रही।

9

बड़ा मनोहर प्रभात था। शीतल मंद समीर झकोरे ले रहा था। मंजुघोषा प्रातःकालीन पूजा के लिए, संगिनी देवदासियों के साथ फूल तोड़ रही थी। फूल तोड़ती-तोड़ती वह कुछ गुनगुना रही थी। उसका हृदय आनन्द से उल्लसित था। कोई भीतर से उसके हृदय को गुदगुदा रहा था। एक सखी ने पास आकर कहा—

"बहुत खुश दीख पड़ती हो, कहो, कहीं लड्डू मिला क्या?"

मंजु ने हंसकर कहा—"मिला तो तुम्हें क्या?"

"बहन हमें भी हिस्सा दो।"

"वाह, बड़ी आई हिस्से वाली।"

इतने में एक और आ जुटी। सबने कहा—"यह काहे का हिस्सा है बहन!" पहली देवदासी ने कहा—

"अरे हां, क्या बहुत मीठा लगा बहन?"

मंजु ने खीझकर कहा—"जाओ मैं तुमसे नहीं बोलती।"

सबने कहा—"हां बहन, यह उचित भी है। बोलने वाले नये जो पैदा हो गये?"

"तुम बहुत दुष्ट हो गई हो।"

"हमने तो केवल नजरें पहचानी थीं।"

"और हमने लेन-देन भी देखा था।'

"पर केवल आंखों-आंखों ही में।"

"होंठों में नहीं?"

"अरे वाह, इसी से सखी के होंठों में आनन्द-छवि फूटी पड़ती है।"

"और नेत्रों से रस-धार बह रही है।"

मंजु ने कहा—"तुम न मानोगी।"

एक ने कहा—"अरी, सखी को तंग मत करो। हिस्सा नहीं मिलेगा।"

दूसरी ने कहा—"कैसे नहीं मिलेगा, हम उससे मांगेंगी।"
तीसरी—"किससे?"
"भिक्षु से।"
मंजु ने कोप से कहा—"लो मैं जाती हूं।"
"हां हां, जाओ बहन—बेचारा भिक्षु..."
"कौन भिक्षु? कैसा भिक्षु?"
"अजी वही, जिससे रात में फूल-माला लेकर चुपचाप कुछ दे दिया था।"
"और हमसे पूछा भी नहीं।"
"तुम सब दीवानी हो गई हो।"
"सच है बहन, हमारी बहन खड़े-खड़े लुट गई तो हम दीवानी भी नहीं।" मंजु उठकर चल खड़ी हुई। इस पर उसे सबने पकड़कर कहा—
"रूठ गई रानी, भला हमसे क्या परदा? हम तो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।"
"और देवताओं की दासियां हैं।"
"अजी देवताओं की क्यों? देवताओं के दासों की भी।"
"पर सखी, भिक्षु है एक ही छैला।"
"वाह! कैसी बांकी चितवन, कैसा रूप।"
"भिक्षु है तो क्या? सैकड़ों नट-नागरों से बढ़-चढ़कर है।"
"चल रहने दे, दुनिया में एक से एक बढ़कर भरे पड़े हैं।"
"अरी जा, हमने देखा है तेरा वह छैला, गधे की तरह रेंकता है।"
"अपने उस भैंसे को देख, सींग भी नापे हैं उसके?"
"अरी, लड़ती क्यों हो, भिक्षु है किसी बड़े घर का लड़का।"
"सुना है बड़े सेठ का बेटा है।"
"होगा, अब तो भिक्षु है।"
मंजु ने कहा—"भिक्षु है तो क्या। हृदय का तो वह राजा है।"
सखी ने कहा—"अरे, हमारी सखी मंजु उसके हृदय की रानी है।"
"अच्छा, तो फिर?"

"बस तो फिर, हिस्सा।"

"जाओ-जाओ मुंह, धो रखो।" मंजु भागकर दूसरी ओर चली गई। सखियां खिलखिला कर हंसने लगीं। मंजु एक गीत की कड़ी गुनगुनाती फिर फूल चुनने लगी। चुनते-चुनते वह सखियों से दूर जा पड़ी। उधर उद्यान में एक तालाब था। उसी तालाब के किनारे हरी-हरी घास पर दिवोदास और सुखानन्द बैठे बातचीत कर रहे थे। फूल तोड़ते-तोड़ते मंजु वहीं जा पहुंची। दिवोदास को देखा तो धक् से रह गई। दिवोदास ने भी उसे देखा। उसने कहा—"पितृव्य यह तो वही देवदासी आ रही है।"

"तो भैया यहां से भाग चलो नहीं तो फंस जाओगे।"

परन्तु दिवोदास ने सुखदास की बात नहीं सुनी। वह उठकर मंजु के निकट पहुंचा और कहा—

"अपरिचित दर्शन।"

"किसका?"

"आपका।"

"नहीं, आपका।"

"किन्तु आप देवी हैं।"

"नहीं, मैं देवदासी हूं।"

"भाग्यशालिनी देवी।"

"अभागिनी देवदासी।"

अब सुखदास भी उठकर वहां आ गया। उसने पिछली बात सुनकर कहा—"नहीं, नहीं, ऐसा न कहो देवी।"

दिवोदास ने कहा—"तुम प्रभात की पहली किरण के समान उज्ज्वल और पवित्र हो।"

"मैं मिट्टी के ढेले के समान निस्सार और निरर्थक हूं।"

"अरे, आंखों में आंसू? पितृव्य, यह इतना दुःख क्यों?"

सुखदास ने कहा—"जो कली अभी खिली भी नहीं, सुगंध और पराग अभी फूटा भी नहीं, उसमें कीड़ा लग गया है?"

दिवोदास ने कहा—बोलो तुम्हें क्या दुःख है?"

"मैं अज्ञात कुलशीला अकेली, असहाय, अभागिनी देवदासी हूं, इसी में मेरा सारा दुःख-सुख है।"

"तो मेरे ये प्राण और शरीर तुम्हारे लिए अर्पित हैं।"

"मैं कृतार्थ हुई किन्तु अब जाती हूं।"

"इस तरह न जा सकोगी, तुमने अपने आंसुओं से मुझे बहा दिया है, कहो क्या करने से तुम्हारा दुःख दूर होगा। तुम्हारे दुःख दूर करने में मेरे प्राण भी जाएं तो क्या चिन्ता, यह मेरा अहोभाग्य होगा।"

सुखदास ने कहा—"अपने दिल की गांठ खोल दो देवी, भैया बात के बड़े धनी हैं।"

"क्या कहूं, मेरा भाग्य ही मेरा सबसे बड़ा दुःख है। विधाता ने जब देवदासी होना मेरे ललाट में लिख दिया तो समझ लो कि सब दुःख मेरे ही लिए सिरजे गए हैं। जिस स्त्री का अपने शरीर और प्राणों पर अधिकार नहीं, जिसकी आत्मा बिक चुकी है। जिसके हृदय पर दासता की मुहर है। इज्जत, सतीत्व, पवित्रता जिसके जीवन को छू नहीं सकते, जिसका रूप-यौवन सबके लिए खुला हुआ है, जो दिखाने को देवता के लिए शृंगार करती है परन्तु जिसका शृंगार वास्तव में देवदर्शन के उसी शृंगार को देखने आए हुए लम्पट कुत्तों के रिझाने के लिए है, उस अभागिनी देवदासी के लिए पवित्र भिक्षु, अपने बहुमूल्य प्राणों को दे डालने का संकल्प न करो।"

उसने चलने को कदम बढ़ाया। परन्तु दिवोदास ने आगे आकर और राह रोककर कहा—"समझ गया, परन्तु ठहरो। मुझे एक बात का उत्तर दो। तुम इस नन्हें से हृदय में इतना दुःख लिये फिरती हो, फिर तुम उस दिन किस तरह नृत्य करती हुई उल्लास की मूर्ति बनी हुई थीं?"

इसके लिए हम विवश हैं, यह हमारी कला है, उसका हमने वर्षों अभ्यास किया है।

उसने हंसने की चेष्टा की। पर उसकी आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे।

दिवोदास ने उसका हाथ थामकर दृढ़ स्वर में कहा—"देवी, मैं तुम्हें प्रत्येक मूल्य पर इस दासता से मुक्त करूंगा, मैं तुम्हारे हृदय को आनन्द और उमंगों से भर दूंगा।"

"तुम?" मंजु ने उल्लास से भरकर कहा।

दिवोदास ने उसके बिल्कुल निकट आ स्नेहसिक्त स्वर में कहा—"मैं तुम्हारे जीवन की कली-कली खिला दूंगा।"

उसने एक बड़ा-सा फूल उसकी डाली में से उठाकर, उसके जूड़े में खोंस दिया और उसके कन्धे पर हाथ धरकर कहा—

"तुम्हारा नाम?"

"मंजुघोषा, पर तुम 'मंजु' याद रखना और तुम्हारा प्रिय?"

"मैं भिक्षु धर्मानुज हूं।"

"धर्मानुज?"

एक हास्य रेखा उसके होंठों पर आई और एक कटाक्ष दिवोदास पर छोड़ती हुई वह वहां से भाग गई। सुखदास ने कहा—"भैया, यह बड़ी अच्छी लड़की है।"

"पितृव्य, तुम सदा उस पर नजर रखना, उसकी रक्षा करना, उसे कभी आंखों से ओझल नहीं होने देना, मुझे उसकी खबर देते रहना।"

सुखदास ने हंसकर कहा—"फिकर मत करो भैया, इसी से तुम्हारी सगाई कराऊंगा।"

सुखदास एक गीत की कड़ी गुनगुनाने लगा।

10

महासंघस्थविर वज्रसिद्ध और महन्त सिद्धेश्वर एकान्त कक्ष में बैठे गुप्त मंत्रणा कर रहे थे। दोनों दो पृथक् आसानों पर बैठे थे। वज्रसिद्ध ने कहा—"अच्छा उसके बाद?"

"इसके बाद क्या? लिच्छविराज ने काशीराज की प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इस पर काशीराज ने शत-शत सैन्य लेकर लिच्छविराज की राजधानी वैशाली को घेर लिया। लिच्छविराज भी दुर्बल न था। वह भी सैन्य लेकर सम्मुख आया। घनघोर युद्ध हुआ। परन्तु मेरी अभिसन्धि से लिच्छविराज का छिद्र मिल गया। काशीराज ने उनके प्रासाद में घुसकर लिच्छविराज को मार डाला और महल तथा नगर लूट लिया। पीछे उसमें आग लगा दी। सारा नगर जलकर खाक हो गया।"

"परन्तु आपका काम?"

"वह नहीं हुआ। बहुत सिरे मारने पर भी वह गुप्त धन कोष नहीं मिला। मेरी इच्छा लिच्छविराज को जीवित ही पकड़ने की थी—ऐसी ही मैंने काशीराज को सलाह भी दी थी। परन्तु काशीराज ने मेरी बात नहीं रखी, क्रोध में आ लिच्छविराज को तलवार के घाट उतार दिया। इससे उस गुप्त राजकोष का भेद भी लिच्छविराज के साथ चला गया।"

"फिर?"

"उस मारकाट और लूटपाट में गुप्त राजकोष को ढूंढते हुए एक गुप्त स्थान में छिपी एक दासी के साथ तीन वर्ष की बालिका मिली। दासी ने उस बालिका को छीन ले जाने के लिए मेरे सेवकों को बहुत स्वर्ण-धन देना चाहा परन्तु उन्होंने नहीं माना। वे उसे मेरे पास ले आये। बालिका के साथ उसकी धाय भी रोती-पीटती आई और बहुत कुछ अनुनय-विनय उस बालिका को छोड़ देने के लिए करने लगी। परन्तु जब मैंने उस बालिका को काशी ले जाने का संकल्प नहीं छोड़ा तो उसने रो-पीट कर उसके साथ स्वयं भी चलने की प्रार्थना की।

बालिका बड़ी सुन्दर थी तथा वह उसकी दासी धाय थी, इससे मैंने उसे भी बालिका के साथ रखने की अनुमति दे दी।"

"तो वह कन्या?"

"मन्दिर में लाकर मैंने उसे देवार्पण कर दिया और वह देवदासी बना ली गई। उसकी धाय को भी देवदासियों में रख दिया।"

"तो यही वह कन्या है? क्या नाम है उसका?"

"मंजुघोषा, यह नाम उस दासी ही ने रखा था।"

"और वह दासी अब कहां है?"

"वह अभी तक उसी कन्या के साथ देवदासियों में रहती है। उसका शील और नैपुण्य देख मैंने उसे सब देवदासियों का प्रधान बना दिया है।"

"उसका नाम क्या है?"

"सुनयना।"

"ठीक है। तो आपको यह भेद कैसे मालूम हुआ कि मंजुघोषा लिच्छविराज नृसिंह देव की पुत्री है?"

"कन्या के कण्ठ में एक गुटा थी, उसी से। उसमें उसकी जन्मतिथि तथा वंश परिचय था। पीछे उस दासी ने भी यह बात स्वीकार कर ली। इसी से उन दोनों के रहने की उत्तम व्यवस्था मैंने कर दी तथा यह भेद भी मैंने अपने पेट ही में रखा।"

"तो महात्मन्, मैं आपको अब और एक भेद बताता हूं कि यह सुनयना दासी वास्तव में लिच्छविराज नृसिंह देव की राजमहिषी है और मंजुघोषा की असल जन्मदात्री माता है।"

"अरे! यह कैसी बात?"

"यह सत्य बात है।"

"किन्तु उसका प्रमाण?"

"मैं स्वयं उसे जानता हूं। इसी से मैंने बुलवाया था।"

"क्या वह आई है?"

"बाहर उपस्थित है।"

"तो उसे बुलवाइये। वही एक व्यक्ति इस समय जीवित है जो लिच्छविराज के उस गुप्त कोष का ठीक पता जानता है।"

महाप्रभु ने ताली दी। माधव कक्ष में आ उपस्थित हुआ। महाप्रभु ने कहा—

"सुनयना को यहां ले आओ।"

सुनयना ने आकर पृथ्वी पर गिरकर दोनों महात्माओं को प्रणाम किया। सुनयना की आयु कोई 40 वर्ष की होगी। कभी वह अप्रतिम रूप लावण्यवती होगी, इस समय भी रूप ने उसे छोड़ा नहीं था। वह निरावलम्ब थी—परन्तु उसका उज्ज्वल शुभ्र प्रशस्त ललाट और बड़ी-बड़ी आंखें उसकी महत्ता का प्रदर्शन कर रही थीं।

सुनयना ने बद्धांजलि होकर कहा—"महाप्रभु ने दासी को किसलिए बुलाया है?"

वज्रसिद्ध ने कुटिल हास्य करके कहा—लिच्छवि महाराज की महिषी सुकीर्ति देवी, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।"

राजमहिषी ने घबराकर आचार्य की ओर देखा फिर कहा—"आचार्य! मैं अभागिनी सुनयना दासी हूं।"

वज्रसिद्ध जोर से हंस दिये। उन्होंने कहा—"अभी वज्रसिद्ध की आंखें इतनी कमजोर नहीं हुई हैं। परन्तु महारानी तुम धन्य हो, तुमने विपत्ति में अपनी पुत्री की खूब रक्षा की।"

रानी ने विनयावनत होकर कहा—"आचार्य, आप यदि सचमुच ही मुझे पहचान गये हैं तो इस अभागिनी विधवा नारी की प्रतिष्ठा का विचार कीजिए।"

"महारानी, मैं तुम्हें और तुम्हारी कन्या को स्वतंत्र कराने ही काशी आया हूं। महाप्रभु ने ज्योंही मेरे मुंह से तुम्हारा परिचय सुना—वे तुम्हें स्वतंत्र करने को तैयार हो गये।"

"इस अभागिनी का भाग्य आपके हाथ में है।"

"मैं तुम दोनों को अपने साथ ले जाऊंगा तथा लिच्छविराज को सौंप दूंगा। माता और भगिनी को पाकर लिच्छविराज प्रसन्न होंगे।"

"यह तो असम्भावित-सा भाग्योदय है, जिस पर एकाएक विश्वास ही नहीं होता।"

अब महाप्रभु ने धीमी तथा दृढ़ वाणी से कहा—"मैं तुम्हें छोड़ दूंगा, महारानी!"

"मेरी पुत्री सहित।"

"हां।"

"आप धन्य हैं महाप्रभु।"

"परन्तु एक शर्त है।"

"शर्त कैसी?"

"मुझे गुप्त रत्नागार का बीजक दे दें।"

"कैसा बीजक?"

"इतनी नादान न बनो महारानी, वह बीजक दे दो और तुम तथा तुम्हारी कन्या स्वतंत्र हो।"

"प्रभु, मैं कुछ नहीं जानती, मैं लिच्छविराज की पट्टराजमहिषी कीर्तिदेवी नहीं हूं, सुनयना दासी हूं, मैं कुछ नहीं जानती।"

"तुम्हें बीजक देना होगा महारानी।"

"मैं कुछ नहीं जानती।"

"सो अभी जान जाओगी।" उन्होंने क्रुद्ध स्वर में माधव को पुकारा। माधव आ खड़ा हुआ। महाप्रभु ने कहा—"इस स्त्री को अभी अंधकूप में डाल दो।"

माधव ने रानी का हाथ पकड़ कर कहा—"चलो।"

वज्रसिद्ध ने कहा—"ठहरो माधव", फिर रानी की ओर देखकर मृदु स्वर से कहा—"बता दो महारानी, इसी में कल्याण है, मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूं।"

"तुम दोनों लोलुप गिद्धों को मैं पहचानती हूं" रानी ने सिंहनी की भांति ज्वालामय नेत्रों से उनकी ओर देखा—फिर सीना तान कर कहा—"जाओ, मैं कुछ नहीं जानती।"

सिद्धेश्वर ने गर्ज कर कहा—"तब ले जाओ माधव!"

परन्तु वज्रसिद्ध ने माधव को ठहरने का संकेत करके सिद्धेश्वर के कान में कहा—“अंधकूप में डालने को बहुत समय है, अभी उसे समय की ढील दो।” फिर उच्च स्वर से कहा—“जाओ महारानी, अच्छी तरह सोच-समझ लो। अन्धकूप कहीं दूर थोड़े ही है।”

उसने कुटिल हास्य करके सिद्धेश्वर की ओर देखा। सुनयना चली गई और दोनों महापुरुष भी अन्तर्ध्यान हुए। कहने की आवश्यकता नहीं कि सुखदास ने छिपकर सारी बातें सुन ली थीं तथा उसने खूब सतर्क रहकर माता-पुत्री की प्राण रहते रक्षा करने की मन ही मन प्रतिज्ञा की।

11

वैसा ही मनोरम प्रभात था। दिवोदास उसी पुष्करिणी के तीर पर उसी वृक्ष की छाया में बैठा, निर्मल जल में खेलती लहरों को देख रहा था। वह कोई गीत गा रहा था और उसका मन प्रफुल्ल था। उसने प्रेम-विभोर हो आप-ही-आप कहा—"प्रेम-प्रेम-प्रेम, प्रेम के स्मरण से ही कैसी आत्मा हरी हो जाती है। हृदय में हिलोरें उठती हैं, जैसे नए प्राण शरीर में आ गए हों।" वह जैसे प्रत्यक्ष मंजु की रूप-माधुरी को देखने लगा। उसके मुंह से निकला—"वाह, कैसी रूप माधुरी है, कैसी चितवन है, वीणा झंकार के समान उसकी स्वर-लहरी रक्त की बूंदों को उन्मत्त कर डालती है। परन्तु खेद है, मुझे और कदाचित् उसे भी इस विषय पर चिन्तन करने का अधिकार नहीं है। मैं भिक्षु हूं और वह देवदासी। मेरे लिए संसार मिट्टी का ढेला है और उसके लिए अंधेरा कुआं।" वह कुछ देर चुपचाप एकटक लहरों को देखता रहा। फिर उसने आप-ही-आप असंयत होकर कहा—"क्या यही धर्म है? परन्तु इस धर्म का तो जीवन के साथ कुछ भी सहयोग नहीं दीखता? वह धर्म कैसा? जो जीवन से दूर है—जीवन का विरोधी है, जीवन का पातक है। नहीं, नहीं, वह कर्म नहीं है—पाखण्ड है, प्यार ही सब कर्म से बढ़कर धर्म है।"

उसे दूर से मंजु की स्वर-लहरी सुनाई दी। वह उठकर इधर-उधर देखने लगा। मंजु फलों से भरी टोकरी लिये उसी ओर गुनगुनाती आ रही थी। दिवोदास ने कहा—"अहा, वह स्वर्ग की सुन्दरी है। कैसी अपार्थिव इसकी सुषमा है। वन सज गया, संसार सुन्दर हो गया।" उसने आगे बढ़कर कहा—

"देवी!"

"क्या तुम? भिक्षु धर्मानुज।"

"हां, मंजु! किस शक्ति ने मुझसे तुम्हें इस समय यहां मिला दिया, कहो तो?"

"प्रेम की शक्ति ने प्रिय भिक्षु, क्या तुम प्रेम के विषय में कुछ जानते हो?"

"ओह, कुछ-कुछ, किन्तु तुम्हारा वह गान कैसा हृदय को उन्मत्त करने वाला है।"

"तुम्हें प्रिय लगा?"

"बहुत, बहुत, उसने मेरे हृदय की वीणा के तारों को छेड़ दिया है, वे अब मिला ही चाहते हैं, देवी, कैसा सुन्दर यह संसार है, कैसा मनोरम यह प्रभात है और उनसे अधिक तुम—तुम केवल तुम।"

"क्या तुमसे भी अधिक भिक्षुराज?"

"मैं क्या तुम्हें सुन्दर दीख पड़ता हूं?"

"तुम बहुत ही सुन्दर हो प्रिय," मंजु ने निकट आकर उसका उत्तरीय छू लिया।

दिवोदास ने उसका आंचल पकड़कर कहा—"मंजु, मैं तुम्हें प्यार करता हूं—प्राणों से भी अधिक—क्या तुम जानती हो?"

मंजु का कण्ठ सूख गया—उसने भयभीत स्वर में कहा—"प्यार, नहीं-नहीं, यह असंभव है।"

"नहीं प्रिये, यह खूब संभव है।"

मंजु ने दिवोदास का चीवर छूकर कहा—"भिक्षुराज, अपना यह चीवर देखो और मेरे कण्ठ का यह गलग्रह!" उसने कण्ठ में लटकते देवता की मूर्ति की ओर संकेत किया। फिर उसने टूटते स्वर में कहा—"हम दोनों नष्ट जीव हैं प्रिय, प्रेम के अधिकारी नहीं।"

दिवोदास ने आवेश में आकर कहा—"मेरा यह वेश और तुम्हारा गलग्रह झूठा आडम्बर है। सच्ची वस्तु हमारा हृदय है और वह प्रेम से परिपूर्ण है। यदि हृदय हृदय को खींचता है तो मैं कहूंगा, मेरी तरह तुम भी प्रेम का घाव खा गई हो।"

मंजु सिर नीचा किये खड़ी रही—दिवोदास ने कहा—"बोलो, क्या तुम भी मुझसे प्रेम करती हो?"

"यह प्रश्न तो भिक्षु के पूछने योग्य नहीं है प्रिय और...।"

"और क्या?"

"अभागिनी देवदासी के सुनने योग्य भी नहीं। इसी से कहती हूं मुझे जाने दो—मै जाती हूं।"

"जाना नहीं। मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"

परन्तु मंजु ने उत्तर नहीं दिया। वह भूमि पर दृष्टि गड़ाये खड़ी रही। दिवोदास ने आवेशित होकर कहा—"कहो, कहो, सच बात कहो।"

"कहती हूं।" इस शब्दों के साथ ही मंजु की आंखों से टप-टप आंसू टपक पड़े। वह वहां से चलने लगी। दिवोदास ने बाधा देकर कहा—"तब जाती कहां हो प्रिये, इस पृथ्वी पर कोई शक्ति नहीं जो हमें पृथक् कर सके। आओ, हम पति-पत्नी के पवित्र सूत्र में बंध जायें। यह उदयोन्मुख सूर्य और यह कल्लोलित जलराशि हमारे साक्षी रहेंगे।" उसने कसकर मंजु को आलिंगन-पाश में बांध लिया।

मंजु ने छटपटाकर कहा—"भिक्षुराज।"

"कौन भिक्षुराज, मैं उदन्तपुरी के महा धनंजय का इकलौता पुत्र दिवोदास हूं", उसने अपना चीवर चीर-चीर कर फेंक दिया।

मंजु हक्का-बक्का खड़ी देखती रह गई। उसके मुंह से बड़ी देर तक बोली न निकली। फिर उसने कहा—"प्यारे, जानते हो इस अपराध का दण्ड केवल मृत्यु है।"

"क्या मृत्यु से तुम डरती हो प्रिये?"

"मुझे मृत्यु से भय नहीं। मैं तुम्हारे लिए डरती हूं, प्रिय।"

"मैं निर्भय हूं और सारे संसार के सामने मैं श्रेष्टिराज धनंजय का पुत्र, आज से धर्मतः तुम्हारा पति हुआ।"

मंजु ने पुलकित होकर अस्त-व्यस्त स्वर में कहा—"और श्रेष्टि-पुत्र, मैं लिच्छविराज कुमारी भगवती मंजुघोषा आज से धर्मपूर्वक तुम्हारी पत्नी हुई।"

दिवोदास ने आश्चर्य से उछलकर कहा—"क्या कहा? फिर कहो? राजकुमारी भगवती मंजुघोषा?"

"किन्तु तुम्हारी चिरकिंकरी प्रियतम।" उसने दिवोदास की छाती

में सिर छिपा लिया। दिवोदास ने उसे कसकर छाती से लगा उसके मुख पर प्रथम चुम्बन अंकित कर दिया।

मंजुघोषा ने अपने आंचल से एक गव्य माला निकाल कर कहा—"इसे मैंने नित्य की भांति अपने देवता के लिए बनाया था, सो उसे अपनी हार्दिक अभिलाषाओं के साथ हृदय के देवता को अर्पण करती हूं।" माला उसने दिवोदास के कण्ठ में डाल दी। दिवोदास ने माला को चूमकर और हंसकर कहा—"यह देवप्रसाद तो भगवान् ही पा सकता है, देखो यह माला ही हमको एक कर देगी।" उसने वही माला कण्ठ से उतारकर मंजुघोषा के गले में डाल दी। दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े और आलिंगन में बद्ध हो गये।

12

आचार्य वज्रसिद्ध ने एकान्त कक्ष में दिवोदास को बुलाकर कहा—"यह क्या वत्स, मैंने सुना है कि तुमने चीवर त्याग दिया—भिक्षु मर्यादा भंग कर दी।"

"आपने सत्य ही सुना आचार्य।"

"किन्तु यह तो गर्हित पाप कर्म है।"

"आप तो मुझे प्रथम ही पाप-मुक्त कर चुके हैं आचार्य, अब भला पाप मुझे कहां स्पर्श कर सकता है।"

"पुत्र, तुम अपने आचार्य का उपहास कर रहे हो!"

"आचार्य जैसा समझें।"

"पुत्र, क्या बात है कि तुम मुझसे डरते हुए दूर-दूर रहते हो। तुम्हें तो मैंने अपने प्रधान बारह शिष्यों का प्रधान बनाया है। तुम्हें क्या चिन्ता है। मन की बात मुझसे कहो। मैं तुम्हारा गुरु हूं।"

"आचार्य, मुझे आपसे कुछ कहना नहीं है।"

"क्यों?"

"मैं कुछ कह नहीं सकता।"

"तुम्हें कहना होगा पुत्र!"

"तब सुनिये कि मैं भिक्षु नहीं हूं—विवाहित सद्‌गृहस्थ हूं।"

"ऐं, ये कैसी बात?"

"जैसा आचार्य समझें।"

"क्या तुम सद्धर्म पर श्रद्धा नहीं रखते?"

"नहीं।"

"कारण?"

"कारण बताऊंगा तो आचार्य, अविनय होगा।"

"मैं आज्ञा देता हूं कहो।"

"तो सुनिए, आप धर्म की आड़ में धोखे और स्वार्थ के खेल खेल

रहे हैं। बाहर कुछ और भीतर कुछ। सब कार्य पाखण्डमय है।"

"बस या और कुछ।"

"आचार्य, आपने क्यों मेरा सर्वनाश किया। इस कपट धर्म में दीक्षित किया। आपने संयम, त्याग, वैराग्य और ज्ञान की कितनी डींग मारी थी, वह सब तो झूठ था न?"

"पुत्र, तुम जानते हो कि किससे बातें कर रहे हो?"

दिवोदास ने आचार्य की बात नहीं सुनी वह आवेश में कहता गया—"मैंने देख लिया कि ये लोभी-कामी दुष्ट और हत्यारे भिक्षु कितने पतित हैं। अब साफ-साफ कहिए, किसलिए आपने मुझे इस अन्धे कुएं में ला पटका है? आपकी क्या दुरभिसंधि है?"

आचार्य ने कुटिल हास्य हंसते हुए कहा—"तुम्हें सत्य ही पसंद है।"

"तो सत्य ही सुनो—तुम्हारे पिता की अटूट सम्पदा को हड़पने के लिए।"

"यह मेरे जीते-जी आप न कर पाएंगे आचार्य।"

"तो तुम जीवित ही न रहने पाओगे?"

"आपने मुझे निर्वाण का मार्ग दिखाने को कहा था?"

'क्रोध न करो बच्चे, वह मार्ग मैं तुम्हें बताऊंगा। सुनो—राजनीति की भांति धर्मनीति भी टेढ़ी चाल चलती है। तुम जानते हो, हिन्दू धर्म जीव हत्या का धर्म है। यज्ञ और धर्म के नाम पर बेचारे निरीह पशुओं का वध किया जाता है। यज्ञ के पवित्र कृत्यों के नाम पर मद्यपान किया जाता है। इस हिन्दू धर्म में स्त्रियों और मर्दों पर भी, उच्च जाति वालों ने पूरे अंकुश रख उन्हें पराधीन बनाया है। अछूतों के प्रति तथा छोटी जाति के प्रति तो अन्यायाचरण का अन्त ही नहीं है। वे देवदासियां जो धर्म बन्धन में बंधी हैं पाप का जीवन व्यतीत करती हैं।"

दिवोदास सुनकर और मंजुघोषा का स्मरण करके अधीर हो उठा। परन्तु आचार्य कहते गए—"पुत्र, आश्चर्य मत करो, बौद्ध धर्म का जन्म इसी अधर्म के नाश के लिए है, किन्तु मूर्ख जनता को युक्ति से ही सीधा रास्ता बताया जा सकता है, उसी युक्ति को तुम फल कहते हो।"

"आचार्य, आपका मतलब क्या है?"

"यही कि मुझ पर विश्वास करो और देखो कि तुम्हें सूक्ष्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त किस भांति होता है।"

"सूक्ष्म तत्त्व का या मिथ्या-तत्त्व का?"

"अविनय मत करो पुत्र।"

"आप चाहते क्या हैं?"

"एक अच्छे काम में सहायता।"

"वह क्या है?"

"उस दिन उस देवदासी को तुमने देवी का गन्धमाल्य दिया था न?"

"फिर?"

"जानते हो वह कौन है?"

"आप कहिए।"

"वह लिच्छविराज कुमारी है।"

"तब फिर?"

"उसकी माता लिच्छवि पट्टराजमहिषी नृसिंह देव की पत्नी, छद्म-वेश में यहां अपनी पुत्री के साथ, सुनयना नाम धारण करके देवदायियों में रहती थी। उसे सिद्धेश्वर ने अन्धकूप में डलवा दिया है।"

"किसलिए?" दिवोदास ने उत्तेजित होकर कहा।

"लिच्छविराज के गुप्त रत्नागार का पता पूछने के लिए।"

"धिक्कार है उस लालच पर।"

"बच्चा, उसे बचाना होगा। परोपकार भिक्षु का पहला धर्म है।"

"मुझे करना क्या होगा?"

"आज रात को मेरा एक सन्देशा लेकर बन्दी-गृह में जाना होगा।"

"क्या छिपकर?"

"हां।"

"नहीं।"

"सुन लड़के, सिद्धेश्वर उस बालिका पर भी पाप दृष्टि रखता है। उसकी रक्षा के लिए उसकी माता का उद्धार करना होगा।"

"मैं अभी उस पाखण्डी सिद्धेश्वर का सिर धड़ से पृथक् करता हूं।"

"किन्तु पुत्र, बलप्रयोग पशु करते हैं। फिर अपने बलाबल का भी विचार करना है।"

"आपकी क्या योजना है?"

"युक्ति।"

"कहिए।"

"कर सकोगे?"

"अवश्य।"

"पहले, इसे चुपचाप सुनयना को पहुंचा दो। लेख सामग्री भी ले जाना—इसके उत्तर आने पर सब कुछ निर्भर है।"

"क्या?"

"सुनयना का सन्देश पाकर लिच्छविराज काशी पर अभियान करेगा।"

"समझ गया, किन्तु प्रहरी?"

"लो यह सबका मुंह बन्द कर देगी।" आचार्य ने मुहरों से भरी एक थैली दिवोदास के हाथों में पकड़ा दी। साथ ही एक तीक्ष्ण कटार भी।

"इसका क्या होगा?"

"आत्म-रक्षा।"

"ठीक है।"

यह सुनकर आश्वस्त हो आचार्य ने कहा—"तो पुत्र, तुम जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।"

"बाहर आकर दिवोदास ने देखा—सुखदास खड़ा है। उसने उसे देखकर प्रसन्न होकर कहा—"सुना?"

"सुना।"

"यह देखो! उसने मुहरों की थैली दी है।"

"देखी, देखी, वह छुरी भी देखी" सुखदास हंस दिया।

"मतलब समझे।"

"पहले से ही समझे बैठा हूं। तुम चिन्ता न करो।"

13

काशी के बाजार में काशीराज का साला शम्भुदेव मुसाहिबों सहित आ रहा था। बाजार सुनसान था। दुकानें बंद थीं। रात हो गई थी। सड़कों पर धुंधला प्रकाश हो रहा था।

शम्भुदेव—"अफसोस कामदेव के वाणों से घायल हो होकर..."

एक मुसाहिब—"हां महाराज, घायल होकर..."

शम्भुदेव—-"रात-दिन सुरा और सुन्दरियों..."

वही मुसाहिब—"क्या बात कही है, हां महाराज सुरा और सुन्दरियों में..."

शम्भु—"मन फंस जाने से..."

वही मुसाहिब—"हां, मन फंस जाने से..."

शम्भु—"नगर का कुछ हाल-चाल महीनों से नहीं मिल रहा है।"

वही मुसाहिब—"धन्य धर्ममूर्ति, आपको नगर की इतनी चिन्ता है।"

शम्भु (सबसे)—"अरे भाइयो, आखिर मैं नगर कोटपाल हूं या नहीं?"

सब मुसाहिब—"हां महाराज, हां! उसने अपने शास्त्रों की ओर संकेत किया।"

शम्भु—"तब हमें राजा ही समझो।"

सब मुसाहिब—"महाराज की जय हो।"

शम्भु—(पहले मुसाहिब के कान में झुककर) "महाराज के बाद समझे?" पहले मुसाहिब ने सबकी ओर एक खास संकेत में देखा, फिर सबने एक साथ कहा।

सब—"हां महाराज, सत्य है।"

शम्भु—"तब मुझे नगर बस्ती की फिक्र करनी ही चाहिए। अरे चल मिथ्यानन्द, नगर का हाल-चाल कह।"

मिथ्यानन्द—"जो आज्ञा महाराज। किन्तु अभय दान हो तो सत्य कहूं।"

शम्भु—"कह, कह, डर मत।"

मिथ्यानन्द—"तब सुनिए महाराज! नगर में बड़ा गड़बड़झाला फैला है, रंडी-भड़ुए भूखों मरने लगे हैं, लोग अपनी-अपनी सड़ी-गली धर्मपत्नियों से ही सन्तोष करने लगे हैं। धुनिया, जुलाहे, चमार खुलकर शराब पीते हैं। कोई कुछ नहीं कहता, परन्तु ब्राह्मणों को सब टोकते हैं। शराब की बिक्री बहुत कम हो रही है। लोग रात-भर जागते रहते हैं। चोर बेचारों की घात ही नहीं लगती, वे घर से निकले कि फंसे। सड़कों पर रात-भर रोशनी रहती है, भले घर की बहू-बेटियां अब छिपकर अभिसार को जायें तो कैसे? और महाराज, अब तो ब्राह्मण भी परिश्रम करने लगे।"

शम्भुदेव—"(क्रोध से) समझा। मुद्दत से हमने नगर के प्रबन्ध पर ध्यान नहीं दिया, इसी से ऐसा हो रहा है, मैं सबको कठोर दण्ड दूंगा। (मुसाहिबों से) समझ गए आप, मैं सबको कठोर दण्ड दूंगा।"

सब—"(विनय से) धन्य महाराज, आप न्याय-मूर्ति हैं।"

शम्भु.—"(कुमतिचन्द से) अच्छा कुमतिचन्द उपाध्यक्ष, तुम क्या कहते हो?"

कुमति.—"(हाथ जोड़कर) श्रीमान् का कहना बिल्कुल ठीक है।"

शम्भु.—"(हाथ मिलाकर) प्रबन्ध करना होगा प्रबन्ध! नगर में बड़ा गड़बड़ हो रहा है।"

कुमति.—"हां महाराज, हां।"

शम्भु.—"(डपटकर) तब करो प्रबन्ध।"

कुमति.—"जो आज्ञा।" (वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। इसी बीच में गोरख ब्राह्मण आता दीख पड़ा। साथ में पीछे चार शिष्य भी थे।)

गोरख.—"(इधर-उधर देखता हुआ) हटो, बचो, ब्राह्मण आ रहा है। दुष्ट, नीच, शूद्र कैसी असावधानी से चल रहे हैं।"

शम्भु.—"(गोरख को आता देख) अरे, गोरख महाराज हैं। (प्रकट में गोरख से) प्रणाम ब्राह्मण देवता।"

गोरख.—"अरे कोटपाल हैं—(शिष्य से) अरे कलहांकुर! शीघ्र कोटपाल को आशीर्वाद दे।" कलहांकुर ने दूब जलपात्र में डुबोकर आशीर्वाद दिया—"शत्रु बढ़े, भय-रोग बढ़े, कलवार की हाट पै ठाठ जुड़े। भडुए-रंगी रस-रंग करें। निर्भर तस्कर दिन-रात फिरें।"

शम्भु.—"आज किधर सवारी बढ़ी? आजकल तो महाराज यज्ञ की खटपट कर रहे हैं। बड़ी चहल-पहल है, निमंत्रण तो मिला ही होगा।"

गोरख.—"नहीं, इस बार राजा मुझे भूल गया है, उसने मुझे इस आनन्द से वंचित करके अच्छा नहीं किया।"

शम्भु.—"अरे, ऐसा अनर्थ? तुम काशी महामहोपाध्याय, प्रकाण्ड विद्वान्!"

गोरख—'वही तो, काशीराज का नाश होने वाला है, मैं उसे शाप दूंगा।"

शम्भु—"(हंसकर) शाप! केवल इतनी-सी बात पर? नहीं, ऐसा न करना देवता! हां, कभी इन चरणों की रज मेरे घर पर भी डालकर पवित्र कीजिए। (कान में) बहुत बढ़िया नई-पुरानी मद्य गौड़ देश से आई है।"

गोरख.—"(हंसकर) अच्छा, अच्छा, कभी देखा जायेगा।"

शम्भु.—"कभी नहीं, कल। (कान में) हां, उस विषय का क्या रहा? वह सुन्दरी दासी, मंजुघोषा..."

गोरख.—"महाराज, समय पर सब काम होंगे, जल्दी करना ठीक नहीं।"

शम्भु.—"तो कब तक आशा करूं।" उसने घूमकर देखा। सामने जयमंगल आ रहा था। "अहा! श्रेष्टिपुत्र जयमंगल आ रहे हैं।"

जयमंगल—"(निकट पहुंचकर) मेरे मित्र महाराज शम्भुदेव हैं और मेरे मित्र गोरख महाराज भी।"

गोरख.—"(जयमंगल से) सावधान रहो, ब्राह्मण किसी का मित्र नहीं। वह जगत्पूज्य है।"

जयमंगल—"(हंसकर) ब्राह्मण देवता प्रणाम करता हूं।"

गोरख.—"(उसी शिष्य से) आशीर्वाद दे रे।"

शिष्य घास के तिनके जलपात्र में डुबोकर जयमंगल पर छींटे देता हुआ बोला—

तोड़ो तर माल, लोट मारो तुम गद्दों पर।
दोस्तों में बैठकर शतरंज ताश खेलिये।।
देह का दुश्वार भार लाद के चलेंगे कहां।
गद्देदार गाड़ियों में बैठ मजा लीजिये।
आप हैं अमीरजादे नाजुक मिजाज भला।
कंचन सी काया पर कैसे कष्ट झेलिये।
नौकर कभी न काम करें किन्तु।
आप तो, इमली के पत्ते पर बैठे डंड पेलिये।।

शम्भु.—"कहो मित्र, कल तुम जुए में इतना रुपया हार गये परन्तु चेहरे पर वही मौज बहार है।"

जयमंगल—"वाह, रुपया-पैसे हाथ का मैल है, उसके लिए सोच क्या? जब तक भोगा जाए भोग करना चाहिए।"

गोरख.—"इसमें क्या सन्देह, संयम और धर्म के लिए तो सारी उम्र पड़ी है। जब इन्द्रियां थक जायेंगी, वह काम भी कर लिया जायेगा।"

शम्भु.—"क्या बात कही है, अच्छा भाई हम जाते हैं, नगर का प्रबन्ध करना है, परन्तु कल का निमंत्रण मत भूलना।" यह कहकर एक ओर को चल दिया।

गोरख.—"(स्वगत) मूर्ख! धन और अधिकार के घमंड में ब्राह्मण को निमंत्रण का लोभ दिखाकर अपने नीच वंश को भूल जाता है। (जयमंगल के कान में) जानते हो इसकी जाति?"

जयमंगल—"नहीं, क्या जाति है भला?"

गोरख.—"साला कुनबी है कि जुलाहा, याद नहीं रहा।"

सामने से चन्द्रावलि आ रही थी। उसे देखकर जयमंगल से प्रसन्न होकर कहा—"अरे, यह कौन सुन्दरी आ रही है। समझा चन्द्रावलि

देवदासी है। (जयमंगल से) श्रेष्टिपुत्र, देखो बिना बादल के बिजली? पहचानते हो?"

जयमंगल—"(देखकर) पहचानता हूं। (आगे बढ़कर चन्द्रावलि से) चन्द्रावलि, अच्छी तो हो।"

चन्द्रा.—"(हंसकर) आपकी बला से। आप तो एकबारगी ही पुराने मित्रों को भूल गये।"

जय.—"वाह, यह मुख क्या भुलाया जा सकता है?"

चन्द्रा.—"आपसे बातों में कौन जीत सकता है।"

जय.—'(चन्द्रावलि से) इस मुख को देखकर तो गूंगा भी बोल उठे।"

चन्द्रा.—"(हंसकर) तब कब श्रीमान् मेरे घर पधारेंगे?"

जय.—"कहिए तो अभी..."

चन्द्रा.—"(हंसकर) अभी नहीं कल।"

जय.—"(हंसकर) अच्छा।

चन्द्रा.—"(गोरख से) आप भी ब्राह्मण।"

गोरख.—"(चन्द्रावलि से) सिर के बल।"

चन्द्रावलि हास्य बिखेरती हुई चली गई।

गोरख.—"बहुत ही सुन्दर है। क्यों श्रेष्टि-पुत्र?"

जय.—"है तो, परन्तु..."

गोरख.—"परन्तु क्या?"

जय.—"कहने योग्य नहीं।"

गोरख.—कहो, क्या किसी ने तुम्हारा मन हरण किया है?"

जय.—"किया तो है।"

गोरख.—वह कौन है?"

जय.—"वह अद्वितीय सुन्दरी बाला है।"

गोरख.—'वह है कहां?"

जय.—"मन्दिर ही में।"

गोरख.—"मन्दिर ही में?"

जय.—"हां, (आनन्द में भर कर) एक दिन सन्ध्या समय मन्दिर

में मैं गया था। आरती नहीं हुई थी, वहां सन्नाटा था, महाप्रभु नहीं आये थे। मैं भीतर चला गया। सहसा मुझे एक आहट सुनाई दी। देखा एक फूल-सी सुकुमारी बैठी देवता का फूलों से शृंगार कर रही है। हम लोगों की आंखें चार हुईं। मेरे हृदय में बर्छी लगी, तब से मेरी यह दशा है। (मग्न होकर) वाह! क्या सुन्दरी थी। विधाता ने सुन्दरता के कण सारे संसार से इकट्ठा करके उसे रचा होगा। उसकी आंखों में आंसू थे। उसके होंठ फड़क रहे थे।''

गोरख–''क्या उसका नाम तुमने पूछा?''

जय.–''जब मैंने उसके निकट जाकर पूछा–'सुन्दरी, तुम्हारा नाम क्या है और तुम्हें क्या दुःख है, तो वह बिना उत्तर दिए चली गई। परन्तु मुझे उस मोहिनी के नाम का पता चल गया, वह मंजुघोषा थी।''

गोरख.–''समझा। (हंसकर स्वगत) वही मंजुघोषा, जिसे देखो वहीं मंजुघोषा की रट लगा रहा है। (जयमंगल से प्रकट में) उसकी आशा छोड़ दो श्रेष्टि।''

जय.–''कभी नहीं, चाहे प्राण भी देने पड़ें।''

गोरख.–''तब प्राण त्यागो,'' फिर कुछ सोचकर कहा–''परन्तु मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं।''

जय.–''(मोहरों की थैली पकड़ा कर) मैं तुम्हें सर्वस्व दूंगा देवता।''

गोरख–''(थैली रखकर) हंसता हुआ, तब आओ मन्दिर में।''

सुखा.–(सुखानन्द आड़ से निकलकर)–''बिचारी मंजुघोषा पर कोई नई मुसीबत आने वाली है। देखूं कुछ तिकड़म लड़ाऊं।''

वह छिपता हुआ गोरख के पीछे-पीछे चला।

14

शयन-आरती हो रही थी। मन्दिर में बहुत स्त्री-पुरुष एकत्रित थे। संगीत नृत्य हो रहा था। भक्तगण भाव-विभोर होकर नर्तिकाओं की रूप-माधुरी का मधुपान कर रहे हैं। दिवोदास एक अंधेरे कोने में छिपा खड़ा था। वह सोच रहा था, शयन विधि समाप्त होते ही मेरा कार्य सिद्ध होगा। कैसी दुःख की बात है इन पाखण्डियों के लिए कि मुझे भी छल-कपट करना पड़ रहा है। उसने देखा—दो अपरिचित पुरुष आकर उसके निकट ही छिपकर खड़े हो गये हैं। दिवोदास ने सोचा—ये लोग कौन हैं? और इस प्रकार छिपकर खड़े होने में इनकी क्या दुरभि-संधि है? वह इतना सोच ही रहा था कि आगन्तुकों में से एक ने कहा—

"किन्तु मंजुघोषा तो यहां दिखाई नहीं दे रही है?"

मंजु का नाम सुनकर दिवोदास के कान खड़े हो गए। उसने सोचा यह कोई नया षड्यंत्र है। वह ध्यान से उनकी बातें सुनने लगा।

आगन्तुकों में एक गोरख ब्राह्मण था, दूसरा जयमंगल सेठ।

सेठ ने कहा—"क्या यह सच है कि महाप्रभु भी उस छोकरी पर मुग्ध हैं।" गोरख ने उसका हाथ दबाकर कहा—"चुप-चुप, महाप्रभु इधर ही आ रहे हैं।" दोनों अंधकार से निकलकर बाहर प्रकाश में आ खड़े हुए। सिद्धेश्वर को देखकर दोनों ने प्रणाम किया। सिद्धेश्वर ने हंसकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"आज नगर की चहल-पहल छोड़कर श्रेष्टि-पुत्र इस समय यहां कैसे?"

"महाराज, क्या यहां सब कुछ नीरस ही है?"

"किन्तु जिसने कंचन कामिनी का स्वाद ले लिया, उसे मधुरस, देव-प्रसाद में क्या मिलेगा?"

"गुरुदेव, जैसे बिना विरह के प्रेम का स्वाद नहीं मिलता, उसी

प्रकार बिना विलास किये, शान्ति का अनुभव नहीं होता।"

"यह तो तुम्हारी भावुकता है श्रेष्टि-पुत्र, जो कामना के अग्निकुण्ड में ईंधन डालेंगे उन्हें शान्ति कहां मिलेगी?" उसने गोरख की ओर तीखी दृष्टि से देखा।

जयमंगल ने कहा—"महाराज, विधाता ने भोगविलास के लिए जवानी और त्याग के लिए बुढ़ापा दिया है।"

सिद्धेश्वर ने हंसकर कहा—"हो सकता है कि श्रेष्टि-पुत्र, जब तक समय है भोग लो। फूल सूख जायेगा। गंध हवा में मिल जायेगी। जगत् में दो ही मार्ग हैं। भोग और योग। तुम भोग के मार्ग पर हो, मैं योग के। अच्छा अब जाता हूं—चिरंजीव रहो।"

सिद्धेश्वर के जाने पर गोरख ने सिर उठाया। अब तक वह सिर नीचा किए खड़ा था। अब उसने कहा—"साक्षात् कलियुग के अवतार हैं श्रेष्टि कुमार।

जयमंगल ने हंसकर कहा—"मालूम तो यही होता है। परन्तु इनके तप और वैराग्य की तो बड़ी-बड़ी बातें सुनी हैं, वे सब झूठी हैं?"

"आओ देखो।"

उसने संकेत से सेठ-पुत्र को पीछे आने को कहा और एक पेचीदा तंग गली में घुस गया। उन दोनों के पीछे दिवोदास भी छिपता हुआ चला। इसी समय सुखदास भी उससे आ मिला।

एक कुंज के निकट पहुंचकर सिद्धेश्वर ने पुकारा—"माधव।"

माधव ने सम्मुख आ प्रणाम किया। सिद्धेश्वर ने कहा—

"माधव, अभागे बौद्धों को धोखा देने और मेरी सभी गुप्त आज्ञाओं का तत्परता से पालन करने के बदले मैंने तुम्हें भण्डार का प्रधान अधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया है।"

"तुम जानते ही हो कि सुन्दरियों का कोमल आलिंगन, मेरी योग-साधना है।"

"हां प्रभु।"

"मुझे कोई कुछ समझे, परन्तु तुमसे कुछ छिपाना नहीं चाहता। मैं

अपनी चित्तवृत्ति के देवता को सुन्दरियों की बलि से सन्तुष्ट करता हूं। तुम्हें मालूम है कि लिच्छवि-राजकुमारी मंजुघोषा इस समय मेरी आंखों में है, मैं उसका रक्षक हूं।"

माधव ने हंसकर कहा—"समझ गया प्रभु। अब रक्षण काल समाप्त हो गया। वह फल सावधानी से पाला गया है, अब पक गया है। महाप्रभु अब उसका भक्षण करना चाहते हैं।"

"ठीक समझे माधव, जिस तरह प्रभात की वायु, फूल की कली को खिलाकर उसकी सुगन्ध ले उड़ती है, उसी तरह यौवन के प्रभात ने उस कली को खिला दिया है। अब उसकी सुगन्ध मेरे उपभोग में आनी चाहिए।"

गोरख ने जयमंगल का हाथ दबाया और दिवोदास ने वस्त्र में छिपी छुरी को सम्हाला। सुखदास ने पीछे से उसके कान में कहा—"चुपचाप सब कृत्य देखो, जल्दी मत करो।"

माधव ने कहा—"तो इसमें क्या कठिनाई है प्रभु?"

"वह अभागा भिक्षु उस पर मोहित प्रतीत होता है। ध्यान रखना ये भाग्यहीन मिथ्यावादी लोग, मन्दिर के भेदों को न जानने पावें।"

"ऐसा ही होगा प्रभु, और क्या आज्ञा है?"

"आज आधी रात को मैंने मंजुघोषा को महामंत्र की दीक्षा देने के लिए गर्भगृह में बुलाया है। इसी के लिए वह तीन दिन से व्रत और उपवास कर रही है। तुम उसे दो पहर रात बीते मेरे सोने के कमरे में ले आना। समझे।"

"समझ गया प्रभु।"

"एक बात और है।"

"क्या?"

"अंधकूप पर कड़ा पहरा लगा दो और यह खबर सुनयना के कानों में न पड़ने पावे।"

"बहुत अच्छा।"

माधव एक ओर को चल दिया और सिद्धेश्वर दूसरी ओर को।

गोरख ने कहा—"अब कहो?"

जयमंगल ने तलवार वस्त्र से निकालकर कहा—"मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।"

सुखानन्द ने बढ़कर कहा—"और मैं भी।"

जयमंगल ने कहा—"वाह तब तो हमारा ही दल विजयी होगा।"

चारों जन कुछ सोच-सलाह कर, एक अंधेरी गली में घुस गए।

15

सिद्धेश्वर कमरे में गद्दी के ऊपर बैठा सामने खिड़की से चमकते हुए बहुत से तारों और चन्द्रमा को देख रहा था। चौकी पर सामने एक तांबे की तख्ती रखी थी। ऊपर कुछ अंक लिखे थे—उन्हें देख-देखकर वह एक भोजपत्र पर कुछ लकीरें खींच रहा था, फिर कुछ उंगलियों पर गिनता था। बीच-बीच में उसकी भृकुटि में बल पड़ जाते थे। आकाश में चन्द्रमा पर एक बादल का टुकड़ा छा गया। सिद्धेश्वर ने एकाग्र होकर उस ताम्रपत्र पर दृष्टि गड़ा दी। अन्त में व्याकुल होकर लेखनी फेंक दी।

सिद्धेश्वर—"(आप ही आप) वही एक फल। दुर्भाग्य, असफलता, दुर्घटना, रक्तपात। सब दुष्ट ग्रह मिल गये हैं। मंगल, बुध, शुक्र और शनि तथा चन्द्रमा चौथे स्थान में हैं। गुरु केतु केन्द्र में, राहु अष्टम में है। जन्म से राहु पंचम है। परन्तु चाहे जो हो, मेरी शक्ति बड़ी है, मेरा मंत्रबल ऊंचा है। मैं आशा नहीं छोड़ूंगा। सात अरब की सम्पदा और अनिन्द्य सुन्दरी मंजुघोषा? त्यागने की वस्तु नहीं। मंजु मेरे आधीन है, परन्तु सम्पत्ति? (तांबे की तख्ती पर दृष्टि डालकर) यह आधा बीजक है, आधा सुनयना ने कहीं छिपा रखा है।" वह उठकर बेचैन होकर टहलने लगा।

उसने फिर कहा—"चाहे जो हो, छल से या बल से मैं उसे वश में करूंगा! परन्तु इतना विलम्ब क्यों हो रहा है। माधव उसे अभी तक लाता क्यों नहीं। कहीं उस पर मेरा कौशल तो प्रकट नहीं हो गया? नहीं, यह संभव नहीं।"

इसी समय एक विश्वस्त दासी ने आकर सूचना दी कि माधव और दासी मंजुघोषा चरण सेवा में आ रहे हैं।

सिद्धेश्वर—"उन्हें आने दो।"

(आगे मंजु, पीछे माधव ने आकर प्रणाम किया।)

सिद्धेश्वर—"माधव! इसे पवित्र वेदी के कक्ष में ले जाओ और पूजा का प्रबन्ध करो। मैं अभी आकर इसे महामंत्र की दीक्षा दूंगा। (मंजू से) मंजू, आज तुम्हारा जीवन सफल होगा।"

माधव झुककर चल दिया, मंजू भी सिर झुकाकर चुपचाप पीछे-पीछे चली गई।

सिद्धेश्वर ने हाथ मलते हुए कहा—"अब कहां जाती है।"

वह अपने हाथ से ढाल-ढाल कर मद्य पीने लगा।

माधव मंजु को गुप्त द्वार से उस अंधेरी टेढ़ी-मेढ़ी राह से ले चला। मंजु भयभीत हुई। उसने कहा—"वहां कहां लिये जाते हो?"

माधव—"पवित्र वेदी तो वहीं है।"

मंजु—"पर वहां तो घोर अंधकार है।"

माधव—"तुम्हारे जाते ही वह आलोकित हो जायेगा।"

मंजु—"मुझे मेरे आवास में पहुंचा दो माधव।"

माधव—"आज नहीं कल।"

मंजु—"कल क्यों?"

माधव—"तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगा।"

मंजु—"इसका क्या मतलब है?"

माधव—'कल तुममें वह शक्ति आ जायेगी।"

मंजु—"मैं नहीं समझी माधव।"

माधव—'न समझना ही अच्छा है।"

मंजु—"क्यों?"

माधव—"वह वेदी है। वहां खड़ी रहो और जो पूछना हो आचार्य से पूछना", मंजु कुछ देर चुपचाप खड़ी माधव को एकटक देखती रही।

माधव मंजु को वहीं खड़ी छोड़कर चला गया। मंजू वहां की भयानक मूर्तियों को देखकर भय से कांपने लगी। एकाएक गुप्त द्वार से सिद्धेश्वर ने प्रवेश किया।

सिद्धेश्वर—"(निकट आकर मंजु से) सुन्दरी मंजुघोषा, तुम्हारे आने से उस पवित्र स्थान के सभी दीपक मन्द पड़ गये, समझती हो क्यों?"

मंजु—"(नीची दृष्टि करके) नहीं प्रभु।"

सिद्धेश्वर—"तुम्हारी सुन्दरता से। तुम्हारे कोमल अंग की सुगन्ध ने यहां के सब फूलों की सुगन्धि को मात कर दिया है।"

मंजु—"विरक्त भाव से चुप खड़ी रही। उसने लज्जा और संकोच से सिर झुका लिया।"

सिद्धेश्वर—"(मंजु का हाथ पकड़कर) मंजु, तुमने मेरी बात नहीं समझी?"

मंजु—"नहीं प्रभु। उसने हाथ खींचकर छुड़ा लिया।"

सिद्धेश्वर—"तुम भोली हो, ठहरो पहले इस पवित्र प्रसाद को पियो।"

उसने मद्यय ढाल कर पात्र मंजु के मुंह के पास लगा दिया, फिर बोला—पियो मंजु, यह देवता का प्रसाद है।"

मंजु ने निषेध किया। परन्तु सिद्धेश्वर ने उसे जबर्दस्ती पिला दिया। पीछे—स्वयं भी पी। मंजु भयभीत हो खड़ी रही।

सिद्धेश्वर—"तुम्हारे सौन्दर्य का मद इस मद से बहुत अधिक है। समझी मंजु।" उसने मंजु की ठोड़ी छूकर कहा।

मंजु—"प्रभो! आप गुरु हैं, ऐसी बातें न कीजिये।"

सिद्धेश्वर—"(हंसकर) ठीक है! आओ, अब तुम्हें महामंत्र की दीक्षा दूं। उसने उसका हाथ पकड़ा और एक ओर को ले गया।"

दिवोदास, जयमंगल, सुखानन्द और गोरख भी छिपते हुए पीछे-पीछे चले। जिस कमरे में वे पहुंचे, उस कमरे में विलास की सब सामग्री उपस्थित थी। गुमशुदा पलंग था, बड़ी-बड़ी वीणायें, मद्य के स्वर्णपात्र आदि सामग्री उपस्थित थी। कमरा खूब सजा था। फूलों की मालायें जगह-जगह टंकी थीं। सिद्धेश्वर मंजु का हाथ पकड़े आया और पलंग की ओर संकेत करके कहा—"यहां बैठो प्यारी?"

मंजु ये सम्बोधन सुनकर चमक उठी। उसने अधीर होकर कहा—"प्रभु, मुझे जाने दीजिये।"

सिद्धेश्वर—"(हाथ पकड़कर) जाती कहां हो प्यारी, (हृदय से

लगाने की चेष्टा करता हुआ) मेरे हृदय में आकर बैठो।"

मंजु—"(शीघ्रता से अलग होने की चेष्टा करके) प्रभु, मैं आपकी पाली हुई पुत्री हूं, छोड़िये! छोड़िये!!"

सिद्धेश्वर—"(छाती से लगाते हुए) बुद्धिमान जन अपने लगाये पेड़ का फल स्वयं खाते हैं, मैंने तुम्हें सींच-सींचकर कब से बड़ा किया है।" उसने बलपूर्वक खींचकर उसे छाती से चिपका लिया।

मंजू—(बलप्रयोग करती हुई) "छोड़िये! छोड़िये!! प्रभु छोड़िये।"

सिद्धेश्वर—"डरो मत मंजु, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।"

मंजु—"जाने दीजिये, छोड़िये।"

सिद्धेश्वर—"पगली लड़की, जानती है सिद्धेश्वर का मस्तक भूतेश्वर भगवान के सामने झुकता है। वही अब तेरे सामने झुक रहा है। मंजु मुझे अपने यौवन का प्रसाद दे" और मंजु को छोड़कर उसके पैरों के पास घुटने टेककर बैठ गया।

मंजु ने सिद्धेश्वर को उठाते हुए कहा—"उठिये प्रभु, यह आप क्या कर रहे हैं?"

सिद्धेश्वर—"(उठकर) मुझे अपना प्यार दो, मंजु!"

मंजु—"नहीं प्रभु, यह कभी नहीं हो सकता, मुझे जाने दीजिये।"

सिद्धेश्वर—"तुम मेरे हृदय में बसी हो, जा कहां सकती हो प्रिये! कहो, तुम मेरी हो," उसने बलपूर्वक खींचकर उसे पुनः छाती से लगा लिय। मंजु ने क्रोध में भरकर जोर से उसे ढकेल दिया, वह गिरकर घायल हो गया। सिर से खून बहने लगा। उसने क्रोधित होकर उठकर मंजु पर चोट करनी चाही, तभी अकस्मात् गुप्त द्वार खुल गया। दिवोदास और जयमंगल तलवार लिये भीतर घुस आए और पीछे-पीछे सुखानन्द भी। इन सबको देखकर सिद्धेश्वर विमूढ़ हो गया।

सिद्धेश्वर—"तुम कौन हो? (पहचान कर) पापिष्ट बौद्ध भिक्षु और तुम अभागे युवक?"

दिवोदास—"मैं तुम्हारा काल हूं। पापिष्ट! पाखण्डी!"

यह कहकर दिवोदास तलवार फेंककर सिद्धेश्वर से भिड़ गया।

मल्लयुद्ध होने लगा। लड़ते-लड़ते एक पत्थर के खम्भे के पास दोनों जा पहुंचे। बीच-बीच में जयमंगल भी एकाध घूंसा सिद्धेश्वर को जमा देता था। मंजु खड़ी भयभीत देख रही थी। उस खम्भे पर भयानक काली की मूर्ति थी। वहां पहुंचकर सिद्धेश्वर ने चिल्लाकर कहा—"जय मां चंडी, लो नर बलि।" मूर्ति भयानक रीति से अट्टहास कर उठी। एक बार सब भयभीत हो गए। मंजु अधिक भयभीत हुई। दिवोदास भी डर गया। पृथ्वी कांपने लगी और सैकड़ों बिजलियां चमकती गरजती दीख पड़ने लगीं। देखते ही देखते वह मूर्ति धरती में धंसने लगी और कक्ष में अग्नि की ज्वाला लपक उठी। मंजु मूर्छित हो गई। सुखानन्द ने साहस कर आगे बढ़कर और पैंतरा संभाल कर सिद्धेश्वर पर चोट की। सिद्धेश्वर मूर्छित होकर गिर पड़ा। दिवोदास ने उसके पंजे से छुटकर लपककर मूर्छित मंजुघोषा को उठा लिया तथा एक ओर ले भागा। सुखदास ने भी नंगी तलवार ले उसका अनुगमन किया।

16

निरापद स्थान पर आकर सुखदास ने कहा—"अब यहां ठहरकर थोड़ा विचार कर लो भैया।"

"हमें यहां से भाग चलना चाहिये।"

"नहीं, अभी नहीं, देवी सुनयना का उद्धार हमें करना है?"

मंजु ने घबराकर कहा—"क्या वे किसी विपत्ति में हैं?"

"उन्हें सिद्धेश्वर ने अन्धकूप में डाल दिया है।"

"किसलिये?"

"गुप्त रत्नकोश के बीजक की प्राप्ति के लिये।"

"किन्तु वह तो मेरे पास है।"

"कहां पाया?"

"देवी सुनयना ने दिया था?"

"तो तुम उसका सब भेद जानती हो?"

"हां, मुझे देवी सुनयना ने सब बता दिया है।"

"देवी सुनयना ने तुम्हें और भी कुछ बताया है?"

"हां, उन्होंने बताया है कि मैं लिच्छवि-महाराज श्रीनृसिंह देव की पुत्री हूं।"

"और देवी सुनयना कौन है? यह भी उन्होंने बताया?"

"वे मेरी माता की दासी और मेरी धाय मां हैं।"

"देखो सुनयना, तुम्हारी जन्मदात्री मां और लिच्छविराज की पट्टराज महिषी सुकीर्ति देवी हैं?"

मंजु ने आश्चर्य और आनन्द से कांपते हुए कहा—"सच?"

"वे तुम्हारे ही कारण अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा को लात मारकर यहां यह गर्हित जीवन व्यतीत कर रही हैं।"

मंजु की आंखों से झर-झर मोती झरने लगे। उसके फूल-से होंठों से मां-मां की ध्वनि निकली।

दिवोदास ने उसका धैर्य बंधाते हुए कहा—"घबराओ मत।"

तुम अभी आवास में जाओ, अब सूर्योदय में विलम्ब नहीं है, दिन में वह पापिष्ट तुम्हारा कुछ अनिष्ट न कर सकेगा तथा तुम अकेली मत रहना, सबके साथ रहना, हम महारानी का उद्धार करके तथा उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाकर तुमसे मिलेंगे। फिर कहीं भाग चलने पर विचार होगा।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूं तो?"

"ठीक नहीं होगा। कार्य में बाधा होगी। तुम जाकर स्वाभाविक रूप से अपनी नित्यचर्या करो, मानो कुछ हुआ ही नहीं है।"

मंजु ने स्वीकार किया। वह अपने आवास की ओर आई। सुखदास और दिवोदास ने परामर्श किया।

सुखदास ने कहा—"मैंने प्रहरियों को मिला लिया है, वे महारानी को छोड़ देंगे। अब उन्हें लेकर कहां छिपाया जाये यही सोचना है।"

"तो यह भी उन्हीं से परामर्श करके सोचा जायेगा। वही इसका ठीक समाधान कर सकेंगी।"

"तो फिर विलम्ब क्यों?" दोनों ने अपने हाथ के शस्त्रों को सावधानी से पकड़ा और अन्धकार में एक ओर बढ़े। दिवोदास ने कहा—'वे दोनों कुत्ते क्या हुए?"

"वह धूर्त ब्राह्मण तो मेरे हाथ से बचकर भाग निकला—परन्तु सेठ को मैंने बांधकर एक खूब सुरक्षित स्थान पर डाल दिया है।"

"तो यही अन्धकूप का द्वार है। तुम प्रहरी से बात करो। सुखदास ने प्रहरी से संकेत किया। उसने चुपके से द्वार खोल दिया। दोनों अन्धकूप में प्रविष्ट हुए। दुर्गन्ध और सील के मारे वहां सांस लेना भी दुर्लभ था।

सुखदास ने कहा—"क्या महारानी जाग रही हैं?"

"कौन है?"

"मैं सुखदास हूं। मेरे साथ श्रेष्टि दिवोदास भी हैं।"

"शुभ है कि आप लोग सुरक्षित हैं। किन्तु मेरी मंजु?"

"आप उसकी चिन्ता न करें महारानी। आप यहां से निकलिये?"

"निकल कर कहां जाऊं?"

"यह हम परामर्श करके ठीक कर लेंगे।"

"यह ठीक न होगा। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं काशीराज और इस धूर्त सिद्धेश्वर से बिना अपने पति का बदला लिये यहां से न जाऊंगी। परन्तु तुम मंजु को लेकर भाग जाओ। गुप्त स्थान मैं बताती हूं।

"कौन-सा?"

"क्या कोई और भी इस गुप्त बात को जानता है?"

"नहीं महारानी।"

"तो मंजु के पास गुप्त राजकोष का बीजक और ताली है। वहां पहुंचने पर आप लोगों को कोई न पा सकेगा।"

"उसका मार्ग?"

"वह बीजक बतावेगा?"

"किन्तु आप?"

"मेरी चिन्ता मत करो, मुझमें अपनी रक्षा की पूरी शक्ति है। तुम मंजु को यहां से ले जाओ।"

"फिर जैसी राजमाता की आज्ञा।"

"तुम्हें आशीर्वाद देती हूं पुत्र, मैं तुम्हें शीघ्र ही मिलूंगी।"

दोनों पुरुषों ने फिर अधिक बात नहीं की। वे अन्धकूप से निकलकर छिपते हुए टेढ़े-मेढ़े रास्ते को पार करते हुए चले। पूर्व में लाली फैल रही थी।

17

मन्दिर में पूजन की तैयारी हो रही थी। रुद्राभिषेक हो रहा था। विविध वाद्य बज रहे थे। काशीराज और सिद्धेश्वर यथास्थान खड़े थे। देवदासियां देवता का शृंगार कर रही थीं—मंजु आरती की माला सजाती हुई कह रही थी—"देव! जीवन भर जिस कार्य का अभ्यास किया, आज वह नीरस हो गया। तुम यदि सचमुच अंतर्यामी हो तो तुमने मेरे मन की दशा समझ ली होगी और तुझे मुझ पर दया आई होगी। मैंने जीवन भर तुम्हारी तन-मन-धन से सेवा की है, अब तुम मेरी इच्छा पूरी करो देव!"

उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से देवता की ओर देखा और पूजा का थाल उठाया। वह दो कदम आगे बढ़ी। देखा सम्मुख दिवोदास खड़ा है। मंजु के हृदय में आनन्द की लहर दौड़ गई। उसने एक बार घृणापूर्वक सिद्धेश्वर की ओर देखा और वह उलट कर दिवोदास के सम्मुख जा पहुंची। उसने दिवोदास की आरती उतारकर देवता की माला भी उसके गले में डाल दी। यह देख सब लोग, पूजा भ्रष्ट हो गई, पूजा भ्रष्ट हो गई, चिल्ला उठे। बाजे एकदम बन्द हो गए। सिद्धेश्वर आपे से बाहर होकर चीख उठे। काशीराज ने क्रुद्ध स्वर से कहा—

"मूर्खे! पूजा भ्रष्ट कर दी।"

किन्तु मंजु ने उधर देखा ही नहीं। उसने आनन्द विभोर दिवोदास के निकट आकर कहा—"पतिदेव, पूजा सार्थक हुई न?"

"हां प्रिये।"

काशीराज ने चीखकर कहा—"दोनों को बांध लो।"

मंजु को उसी के कमरे में बन्द कर दिया गया और दिवोदास को नदी के उस पार दुर्गम दुर्ग में बन्दी कर दिया। मंजु की सखी लता उसके लिए भोजन लेकर आई तो मंजु ने कहा—

"सखी, क्या तू उनका समाचार जानती है?"

"जानती हूं—पर सुनकर तुम्हें दुःख होगा।"

"फिर भी कह दे सखी।"

"मंजु इस प्रेम में अपने को नष्ट न कर।"

"आह सखी, मैं प्यार का घाव खा बैठी हूं।"

"किन्तु वह अज्ञात कुलशील भिक्षु है।"

"अज्ञात कुलशील नहीं—वह धनञ्जय श्रेष्टि का पुत्र है।"

"परन्तु उसे तो महाराज ने कान्तार दुर्ग में बन्दी कर दिया है?"

"हे भगवान्—कान्तार दुर्ग में?"

"वहां उसे प्राणान्त प्रायश्चित्त करने का आदेश दिया गया है। दोनों धूर्त आचार्य उसकी जान के ग्राहक बन बैठे हैं।"

मंजु ने कहा—"सखी, मेरी सहायता कर!"

"जो तू कहे।"

"मुझे वहां जाने दे!"

"कैसे?"

"तू मेरे लिए त्याग कर।"

"तेरे लिए मेरे प्राण भी उपस्थित हैं।"

"तो तू यहां मेरे स्थान में रह, मैं तेरे वस्त्र पहन कर निकल जाऊंगी।"

"तो तू जा।"

"पर जानती है, तेरी क्या गत बनेगी।"

"वे मेरा वध करेंगे, मैं सह लूंगी।"

"हाय सखी—कैसे कहूं।"

"मेरी चिन्ता न कर।"

मंजु ने जल्दी-जल्दी सखी के वस्त्र पहने। अपने उसे पहनाए। भोजन की सामग्री हाथ में ली और बन्धन से बाहर हो गई। प्रहरी कुछ भी न जान सका।

मंजु चल दी। किसी ने उसे लक्ष्य नहीं किया। वह उन्मन की भांति भागी चली जा रही थी। भूख-प्यास और थकान ने उसके कोमल

गात्र को शीघ्र ही क्लान्त कर दिया। उसके पैरों में घाव हो गए और वह बारम्बार लड़खड़ा कर गिरने लगी। वह गिरती उठती—और फिर भागती। घोर वन था। बड़ी तेज धूप थी। सामने भयानक नदी, नदी के उस पार, सूखी नंगी पहाड़ी पर ऊंचा सिर उठाए वह एकान्त दुर्ग था। वह साहस करके नदी में कूद पड़ी। लहरों के साथ डूबती उतराती वह उस पार जा पहुंची।

उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया। परन्तु वह चलती ही चली गई। दुर्गम पहाड़ पर चढ़ना, बड़ा दुःस्साहस का कार्य था परन्तु प्रेम का बल उसे मिलता गया—वह दुर्ग-द्वार पर पहुंच गई। दुर्ग का द्वार बन्द था। उसकी भारी लौह शृंखलाओं में मजबूत ताला पड़ा था। उसने व्याकुल दृष्टि से चारों ओर देखा—उस दुर्गम कान्तार दुर्ग में चिड़िया का पूत भी न था। उसने एक बार दुर्ग के चारों ओर चक्कर लगाया। अन्त में निराश हो थककर वह एक शिलाखण्ड पर पड़ गई। उसे नींद आ गई। न जाने कब तक सोती रही। जब उसकी आंखें खुलीं तो देखा—सूर्य अस्त हो रहा है और एक वृद्ध चरवाहा उसके निकट खड़ा है।

वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। वृद्ध चरवाहे ने कहा—"तुम कौन हो और यहां कैसे आईं?"

"मैं विपत्ति की मारी दुखिया स्त्री हूं बाबा, भाग्य-दोष से यहां आ फंसी हूं।"

"परन्तु यहां सिंह रहता है, तुझे खा जायेगा। बस्ती दूर है, तू रात कहां व्यतीत करेगी।"

"मैं चाहती हूं सिंह मुझे खा जाये।"

"परन्तु तेरे यहां आने का कारण?"

"एक पुरुष इस दुर्ग में बन्द भूखा मर रहा है।"

"तुझे किसी ने कहा?"

"मैं जानती हूं। उसी के लिए मैं आई थी। किन्तु भीतर जाऊं कैसे?"

"भीतर ही जाना है तो मैं पहुंचा सकता हूं, परन्तु वहां कोई मनुष्य नहीं है।"

"क्या तुम जानते हो बाबा।"

"मैं तो वहां नित्य आता जाता हूं।"

"क्या भीतर जाने की कोई और भी राह है।"

"वह मैंने अपने लिए बनाई है।" बूढ़ा चरवाहा हंस दिया।

"तो बाबा, मुझे वहां पहुंचा दो।"

"परन्तु रात होने में देर नहीं है, फिर मेरा भी गांव लौटना कैसे होगा।"

"वहां एक मनुष्य भूखा मर रहा है बाबा।"

"तब चल, मैं चलता हूं।"

दोनों पहाड़ी के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से चलने लगे। मंजु में चलने की शक्ति नहीं रही थी। परन्तु वह चलती ही गई। अन्त में एक खोह में घुसकर चरवाहे ने एक पत्थर खिसकाकर कर कहा—"इसी में चलना होगा।" वह प्रथम स्वयं ही भीतर गया। पीछे मंजु भी घुस गई। थोड़ा चलने पर एक विस्तृत मैदान दीख पड़ा। दूर किसी अट्टालिका के भग्न अवशेष थे।

"वहां चलें बाबा" मंजु ने उधर संकेत करके कहा। चरवाहे ने आपत्ति नहीं की। खण्डहर के पास पहुंच कर मंजु जोर-जोर से दिवोदास को पुकारने लगी। उसकी ध्वनि गूंजकर उसके निकट आने लगी। वहां कहीं किसी जीवित मनुष्य का चिह्न भी न था।

बूढ़े ने कहा—"मैंने तो तुझसे कहा था—यहां कोई मनुष्य नहीं है, अब रात को गांव पहुंचना भी दूभर है, राह में सिंह के मिलने का भय है पर मैं जा सकता हूं। क्या तू यहां अकेली रहेगी? गांव तक चल सकती है?"

"बाबा, मैं यहीं प्राण दूंगी। आपका उपकार नहीं भूलूंगी। आप जाइए।"

"यहां तुझे अकेला छोड़ जाऊं?"

"मेरी चिन्ता न करें—मेरा जीवन अब निरर्थक ही है।"

इसी समय उसे ऐसा भान हुआ, जैसे किसी ने जोर से सांस ली हो।

मंजु ने चौंक कर कहा—"आपने कुछ सुना—यह किसी ने सांस ली है।"

वह लपक कर खोह में घुस गई। उसने देखा—"एक शिलाखण्ड पर दिवोदास मूर्च्छित पड़ा है।" चरवाहा भी पहुंच गया। उसने दूर ही से पूछा—"मर गया या जीवित है।"

मंजु ने रोते हुए कहा—"बाबा, यहां कहीं पानी है?"

"उधर है" और वह निकट पहुंच गया। उसने दिवोदास को ध्यान से देखा। और कहा—"आओ इसे उधर ही ले चलें। बच जायेगा।" दोनों ने दिवोदास की मूर्छित देह को उठा लिया और जहां जल की पुष्करिणी थी वहां ले गये। बांध बांधकर वर्षा का जल रोका गया था। थोड़ी देर में दिवोदास को होश आ गया। उसने आंखें खोलकर मंजु को देखा—उसके होंठों से निकला—"मंजु प्रिये।"

मंजु उसके वक्ष पर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी।

दिवोदास ने धीमे स्वर में कहा—मैं जानता था कि तुम आओगी, सो तुम आ गई।" उसने मंजु को हृदय से लगा लिया। कुछ देर बाद कहा—

"अब मैं सुख से मर सकूंगा।"

"मरेंगे तुम्हारे शत्रु" उसने दृढ़ता से उठकर दिवोदास का सिर अपनी गोद में रख लिया।

"प्यारी, तुमने मुझे जिला दिया।" दिवोदास ने कहा।

"मैंने नहीं प्रिय, इस देव पुरुष ने", मंजु ने उस चरवाहे की ओर संकेत किया। दिवोदास ने अब तक उसे नहीं देखा था। अब उसकी ओर देखकर कहा—

"तुम कौन हो भाई।"

"मैं चरवाहा हूं, पास ही गांव में रहता हूं, यहां नित्य बकरी चराता हूं। भीतर आने जाने की राह यह मैंने अपने लिए बना ली थी। संध्या को जब मैं घर लौट रहा था इन्हें मूर्छित पड़ा देखा। इसी से रुक गया। लड़के को बकरी लेकर घर भेज दिया सो अच्छा ही हुआ—दो-दो प्राणी बच गए।" बूढ़ा बहुत खुश था।

दिवोदास ने कहा—"बचा लिया तुमने बाबा, तुम उस जन्म के मेरे पिता हो। अब यहां मेरे पास आकर बैठो।" बूढ़ा भी वहीं बैठ गया। उसने कहा—"अब तो रात यहीं काटनी होगी। परन्तु खाने को तो कुछ भी नहीं मिल सकता। देखता हूं तुम दोनों भूखे हो।"

मंजु ने कहा—"मेरे पास थोड़ा भोजन है, उससे हम तीनों का आधार हो जायेगा।" उसने पोटली खोली। तीनों ने थोड़ा-थोड़ा खाकर पानी पिया। भोजन करने से दिवोदास में कुछ शक्ति आई—वह एक पत्थर के सहारे बैठ गया। चरवाहे ने कहा—"थोड़ी आग जलानी होगी, नहीं तो वन-पशु का भय है। मैं ईंधन लाता हूं" और वह उठकर चला गया।

मंजु ने उसके गले में बांहें डालकर कहा—"अब तुम तनिक हंस दो।"

"क्या मैं फिर कभी हंस भी सकूंगा?"

"हम सदैव हंसेंगे, गावेंगे, मौज करेंगे" और वह दिवोदास से लिपट गई। दिवोदास ने कहा—"प्यारी, तुम्हारे इस स्नेह-दान ने मेरे बुझते हुए जीवन-दीपक को बुझने से बचा लिया और तुम्हारी मधुर वाणी ने मेरे सूखे हुए जीवन को हरा-भरा कर दिया।" उसे अपने बाहुपाश में कसकर अगणित चुम्बन ले डाले।

चरवाहे ने एक गट्ठर लकड़ी लाकर उसमें आग लगा दी और तीनों आदमी वहीं पृथ्वी पर लेट गये। मंजु पड़ते ही गहरी नींद में सो गई। वह बहुत थकी थी। दिवोदास भी दुर्बल था। वह भी सो गया। परन्तु चरवाहा बड़ी देर तक जागता रहा।

प्रातःकाल होते ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर तीनों ने सलाह की। दिवोदास ने वृद्ध का हाथ पकड़ कर कहा—"मित्र तुम मेरे आज से पितृव्य हुए। अब हम तुम कभी पृथक् न होंगे। मेरे दुख-सुख में तुम्हारा साझा रहेगा।"

बूढ़े ने हंसकर कहा—"तुम चिन्ता न करो भाई। तुम्हारे बराबर ही मेरा लड़का है और ऐसी ही लड़की भी, तुम भी मेरे लड़के-लड़की रहे। गांव चलो, बहुत जमीन है, धान्य है, दूध है। खाओ पीओ मौज करो। तुम्हें क्या चिन्ता।"

"किन्तु पितृव्य हमारा कुछ कर्त्तव्य भी है। तुम्हें उसमें सहायता देनी होगी।"

"कहो क्या करना होगा?"

"हमारे शत्रु हैं।"

"तो मेरे लड़के को बता दो, वह उनकी खोपड़ी तोड़ देगा।"

"परन्तु वे बड़े बलवान् हैं, काम युक्ति से लेना होगा।"

"फिर जैसे तुम कहो।"

"हमें छिप कर रहना होगा।"

"तो हमारे गांव में रहो।"

"वहां नहीं छिप सकेंगे, राज-सैनिकों को पता चल जाएगा।"

"तब क्या किया जाए?" मंजु ने प्रश्न किया।

"राजमाता ने जो आदेश दिया है वही।"

"ठीक है, तो मुझे एक बार मंदिर में जाना होगा।"

"किसलिये?"

"ताली और बीजक लेने, परन्तु एक बात है।"

"क्या?"

"मेरे पास आधा ही बीज है। शेष आधा सिद्धेश्वर के पास है। वह भी लेना होगा। बिना उसके हम उस कोषागार में नहीं पहुंच सकते हैं।"

"तब हमें एक बार काशी चलना होगा। तुम अपनी वस्तु लेना और मैं सिद्धेश्वर से वह बीजक लूंगा।"

बूढ़े ने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

"तुम्हें अब हम नहीं छोड़ेंगे पितृव्य।"

"तो पहले गांव चलो। खा पीकर, टंच होकर रात को काशी चलेंगे। साथ में घोड़े भी ले लेंगे।"

"यही सलाह ठीक है।"

तीनों व्यक्ति उसी खोह की राह से निकल कर गांव की ओर चल दिए।

18

सिद्धेश्वर क्रोधपूर्ण मुद्रा में अपने गुप्त कक्ष में बैठे थे। इसी समय माधव ने रस्सियों से बांधकर लिच्छिवि राजमहिषी सुकीर्ति देवी को उनके सामने उपस्थित किया। सम्मुख आते ही सिद्धेश्वर ने कहा—"तुम्हें मालूम है देवी सुनयना, कि मंजु भाग गई है?"

"तो क्या हुआ, मन्दिर में अभी बहुत पापिष्ठा है?"

"परन्तु क्या तुमने उसके भागने में सहायता दी है?"

"दी तो फिर?"

"मैं तुम्हें और उसे दोनों का प्राणान्त दण्ड दूंगा।"

"बड़ी सुन्दर बात है। जिसे राजरानी पद से च्युत कर विधवा और पतिता देवदासी बनाया—जिसकी बच्ची को पतित जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया और जिसे वासना की सामग्री बनाना चाहते थे—उसी को अब प्राणदण्ड भी दोगे?"

"चुप रहो सुनयना देवी?"

"क्यों चुप रहूं? मैं ढोल पीट कर संसार को बताऊंगी, कि मैं कौन हूं और तुमने मेरे साथ क्या किया है।"

"तुम जो चाहो कहो। कौन तुम पर विश्वास करेगा?"

सुनयना ने चोली से एक छोटी-सी वस्तु निकाल कर उसे दिखाई और कहा—"इसे तो तुम पहचानते हो सिद्धेश्वर, जानते हो, इसमें किसका खून है? इसे देखकर तो लोग विश्वास कर लेंगे?"

"देवी सुनयना, इस प्रकार आपस में लड़ने-झगड़ने से क्या लाभ होगा! तुम मुझे उस खजाने का शेष आधा बीजक दे दो—मैं तुम दोनों को मुक्त कर दूंगा—बस।"

"प्राण रहते यह कभी नहीं होगा।"

"तो तुम्हारे प्राण रहने ही न पावेंगे।"

"जिसने प्राण दिया है—वही उसकी रक्षा भी करेगा, तुम जैसे शृंगालों से मैं नहीं डरती।"

"मैंने उसे पकड़ने के लिए सैनिक भेजे हैं। वह जहां होगी—वहां से पकड़ ली जाएगी और मैं तेरे सम्मुख ही उसे अपनी अंकशायिनी बनाऊंगा।"

"अरे रंगे शृंगाल, उससे प्रथम ही यह छुरी तेरे कलेज के पार हो जाएगी।"

सिद्धेश्वर ने आपे से बाहर होकर कहा—"माधव, ले जा इस सर्पिणी को और डाल दे अंधकूप में।"

माधव उसे लेकर चला गया। कुछ देर तक सिद्धेश्वर भूखे व्याघ्र की भांति अपने कक्ष में टहलता रहा। फिर उसने बड़ी सावधानी से एक ताली अपनी जटा से निकाल लोहे की सन्दूक खोली और उसमें से एक तामपत्र निकाल कर उसे ध्यान से देखा तथा फलक पर लकीरें खींचता रहा। कभी-कभी उसके होंठ हिल जाते—और भृकुटि कुंठित हो जाती। परन्तु वह फिर ध्यान से उसे देखने लगता।

इसी समय उसे कुछ झटका प्रतीत हुआ। उसने आंख उठाकर देखा तो दिवोदास नंगी तलवार लिए सम्मुख खड़ा था। सिद्धेश्वर उछल कर दूर जा खड़ा हुआ। उसने कहा—"तू यहां कैसे आया?"

"इससे तुझे क्या?"

"क्या ऐसी बात?" उसने खूंटी से तलवार उठाकर दिवोदास पर आक्रमण किया।

दिवोदास ने पैतरा बदल कर कहा—"मेरी इच्छा तेरा हनन करने की नहीं है।"

"परन्तु, मैं तो तुझे अभी टुकड़े-टुकड़े करके बलि देता हूं।"

सिद्धेश्वर ने फिर वार किया। परन्तु दिवोदास ने वार बचाकर एक लात सिद्धेश्वर को जमाई। सिद्धेश्वर औंधे मुंह भूमि पर जा गिरा। दिवोदास ने ताम्रपत्र उठाया और अपने वस्त्र में रख लिया।

सिद्धेश्वर ने गरजकर कहा—"अभागे, वह पत्र मुझे दे!"

"वह तेरे बाप की सम्पत्ति नहीं है रे धूर्त।"

"तब ले मर" उसने अंधाधुंध तलवार चलाना प्रारम्भ किया।

दिवोदास केवल बचाव कर रहा था। इसी से वह एक घाव खा गया। इस पर खीझ कर उसने एक हाथ सिद्धेश्वर के मोढ़े पर दिया। सिद्धेश्वर चीख कर घुटनों के बल गिर गया।

इसी समय माधव तलवार लेकर कक्ष में कूद पड़ा। उसने पीछे से वार करने को तलवार उठाई ही थी कि सुखदास ने उसका हाथ कलाई से काट डाला। माधव वेदना से मूर्छित हो गया। इसी समय सुयोग पाकर दोनों भाग निकले। भागते-भागते सुखदास ने कहा—"वहां कुंज में बिटिया छिपी बैठी है। तुम उसे लेकर और दीवार फांदकर वाम तोरण के पीछे आओ वहां अश्व तैयार है। मैं उधर व्यवस्था करता हूं।"

यह कहकर सुखदास एक ओर जाकर अंधकार में विलीन हो गया। दिवोदास उसके बताए स्थान की ओर गया।

संकेत पाते ही मंजु निकल आई। दिवोदास ने कहा—

"तुम्हारा कार्य हुआ?"

"हां! और तुम्हारा?"

"हो गया?"

"तब चलो?"

"किन्तु वह वृद्ध?"

"उन्हें मैंने आगे भेज दिया है।"

"तब चलो। दोनों वाम तोरण के पृष्ठ भाग की ओर वृक्षों की छाया में छिपते हुए चले। दिवोदास एक वृक्ष पर चढ़ गया। उसने मंजु को भी चढ़ा लिया और दोनों दीवार फांद गए। दिवोदास ने कहा—"यहां, अश्व तो नहीं है!"

"पर रुकना निरापद नहीं, हमें चलना चाहिए।"

"चलो फिर, अश्व आगे मिलेंगे।"

दोनों अन्धकार में विलीन हो गए।

19

गहन अंधेरी रात में मंजु और दिवोदास ने निविड़ वन में प्रवेश किया। मंजु ने कहा—"मां का कहना है कि वह जो सुदूर क्षितिज में दो पर्वतों के शृंग परस्पर मिलते से दीखते हैं, उनकी छाया जहां एकीभूत होकर हाथी की आकृति बनाती है, वहीं निकट ही उस गुप्त कोष का मुख द्वार है। इसलिए हमें उत्तराभिमुख चलते जाना चाहिए। विन्ध्य-गुहा को पार करते ही हम कौशाम्बी कानन में प्रवेश कर जायेंगे।"

"परन्तु प्रिये यह तो बड़ा ही गहन दुर्गम वन है, रात बहुत-अंधेरी है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। बादल मंडरा रहे हैं। एक भी तारा दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्षा होने लगी तो राह चलना तो एकबारगी ही असम्भव हो जाएगा।"

"चाहे जो भी हो प्रिय हमें चलते ही जाना होगा। जानते हो उस बाघ ने अपने शिकारी कुत्ते हमारे लिए अवश्य छोड़े होंगे। चले जाने के सिवाय और किसी तरह निस्तार नहीं है।"

"यह तो ठीक है पर मुझे केवल तुम्हारी चिन्ता है प्यारी, तुम्हारे कोमल पाद-पद्म तो कल ही क्षत-विक्षत हो चुके थे। तुम कैसे चल सकोगी।"

"प्यारे, तुम्हारे साथ रहने से तो शक्ति और साहस का हृदय में संचार होता है। तुम चले चलो।"

और वे दोनों निविड़ दुर्गम गहन वन में घुसते चले गए। घनघोर वर्षा होने लगी। बिजली चमकने लगी। वन-पशु इधर-उधर भागने लगे, आंधी से बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर गिरने लगे। कंटीली झाड़ी में फंसकर दोनों के वस्त्र फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गए। शरीर क्षत-विक्षत हो गया। फिर भी वे दोनों एक-दूसरे को सहारा दिये चलते चले गये।

अन्ततः मंजु गिर पड़ी—उसने कहा—"अब नहीं चल सकती।"

"थोड़ा और प्रिये, वह देखो उस उपत्यका में आग जल रही है। वहां मनुष्य होंगे। आश्रय मिलेगा।"

मंजु साहस करके उठी परन्तु लड़खड़ा कर गिर पड़ी। उसने असहाय दृष्टि से दिवोदास को देखा!

दिवोदास ने हाथ की तलवार मंजु के हाथ में देकर कहा—"इसे मजबूती से पकड़े रहना प्रिये"—और उठा कर पीठ पर लाद ले चला।

प्रकाश धीरे-धीरे निकट आने लगा। निकट जाकर देखा—एक जीर्ण कुटी के बाहर मनुष्य मूर्ति भी घूमती दीख पड़ी। परन्तु और निकट आकर जो देखा तो भय से दिवोदास का रक्त जम गया। मंजु चीख मारकर मूर्छित हो गई।

उन्होंने देखा—कुटी के बाहर छप्पर के नीचे एक कापालिक मुर्दे की छाती पर पद्मासन लगाए बैठा है। उसकी बड़ी-बड़ी भयानक लाल-लाल आंखें हैं। उसका रंग कोयले के समान काला है। उसकी जटायें और दाढ़ी लम्बी लटक रही हैं तथा धूल मिट्टी से भरी हैं। कमर में व्याघ्र-चर्म बंधा है। गले में मुण्डमाला हे। सामने मद्यपात्र धरा है, आग जल रही है, लपटें उठ रही हैं। कापालिक अघोर मंत्र पढ़-पढ़ कर मांस की आहुति डाल रहा है। मांस के अग्नि में गिरने से लाल-पीली लपटें उठती हैं।

दिवोदास ने साहस करके मंजु को नीचे पृथ्वी पर उतार दिया और शंकित दृष्टि से कापालिक को देखने लगा।

कापालिक ने कहा—

"कस्त्वं?"

"शरणागत!"

"अक्षता सा?"

इसी बीच मंजु की मूर्छा जागी। उसने देखा—कापालिक भयानक आंखों से उसी की ओर देख रहा है। वह चीख मारकर दिवोदास से लिपट गई।

कापालिक ने अट्टहास करके कहा—"मां मैः वाले!" और फिर पुकारा—

"शारंगव, शारंगव?"

एक नंगधड़ंग, काला बलिष्ट युवक लंगोटी कसे, गले में जनेऊ पहने, सिर मुड़ा हुआ, हाथ में भारी खड्ग लिए आ खड़ा हुआ। उसने सिर झुकाकर कहा—

"आज्ञा प्रभु?"

इन्हें महामाया के पास ले जाकर प्रसाद दे, हम मंत्र सिद्ध करके आते हैं।"

शारंगव ने खोखली वाणी से कहा—"चलो।"

दिवोदास चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दिया। मंजु उससे चिपक कर पीछे-पीछे चली।

मन्दिर बहुत जीर्ण और गन्दा था। उसमें विशालाकार महामाया की काले पत्थर की नग्न मूर्ति थी जो महादेव के शव पर खड़ी थी। उसके हाथ में खांडा, लाल जीभ बाहर निकली थी। आठों भुजाओं में शस्त्र, गले में मुण्डमाला सन्मुख पात्रों में रक्त पुष्प, तथा मद्य से भरे घड़े धरे थे। एक पात्र में रक्त भरा था। सामने बलिदान का खम्भा था। पस ही एक भारी खांडा भी रखा था।

दोनों ने देखा—वहां शारंगव के समान ही चार दैत्य उसी वेश में खड़े हैं। मूर्ति के सम्मुख पहुंच शारंगव ने कर्कश स्वर में कहा—"अरे मूढ़! महामाया को प्रणिपात कर।"

दिवोदास ने देवी को प्रणाम किया। मंजु ने भी वैसा ही किया। एक यमदूत ने तब बड़ा-सा पात्र दिवोदास के होंठों से लगाते हुए कहा—"पी जा रे अधर्मी, महामाया का प्रसाद है।"

"मैं मद्य नहीं पीता।"

"अरे अधम यह मद्य नहीं है, देवी का प्रसाद है, पी। दो यमदूतों ने जबर्दस्ती वह सारा मद्य दिवोदास के पेट में उड़ेल दिया। भय से अभिभूत हो मंजु ने भी मद्य पी ली। तब उन यमदूतों ने उन दोनों को बलियूथ से कसकर बांध दिया। फिर बड़-बड़ कर मंत्र पाठ करने लगे।

मंजु ने लड़खड़ाती वाणी से कहा—"प्यारे, मेरे कारण तुम्हें यह दिन देखना पड़ा।"

"प्यारी, इस प्रकार मरने में मुझे कोई दुःख नहीं।"

"परन्तु स्वामी, हम फिर मिलेंगे।"

"जन्म-जन्म में हम मिलेंगे—प्रिये प्राणाधिके।"

इसी समय कापालिक ने आकर कहा—"प्राणियो, आज तुम्हारा अहोभाग्य है, तुम्हारा शरीर देवार्पण होता है।" उसने रक्त से भरा पात्र उठाकर थोड़ा रक्त उनके मस्तक पर छिड़का—फिर उनके माथे पर रक्त का टीका लगाया। एक दैत्य ने झटका देकर उनकी गर्दन झुकायी। उन पर कापालिक ने स्वस्ति का चिह्न बना दिया। उसके बाद उन दैत्यों ने सिन्दूर से बध्यभूमि पर रचना की। एक दैत्य भारी खांडा ले दिवोदास के पीछे जा खड़ा हुआ।

मंजु ने साहस करके चिल्लाकर कहा—"अरे पातकियो! पहले मेरा वध करो, मैं अपनी आंखों से पति का, कटा सिर नहीं देख सकती।"

कापालिक ने एक बड़ा-सा मद्यपात्र मुंह से लगाया और गटागट पी गया। फिर उसने गरज कर वार करने की आज्ञा दी।

परन्तु इसी क्षण एक चमत्कार हुआ। ब्रह्म राक्षस का खाण्डा हवा में लहराता ही रहा और उसका सिर कटकर पृथ्वी पर आ गिरा।

कापालिक का माथा भय से गर्म हो रहा था। उसने कहा—"अरे, किसने महामाया की पूजा भंग की?"

सुखदास ने रक्त भरा खाण्डा हवा में नचाते हुए कहा—"मैंने, रे पातकी! अभी तेरा धड़ भी शरीर से जुदा करता हूं।"

इसी बीच में वृद्ध ग्वाले ने दिवोदास और मंजु के बंधन खोल दिए। मुक्त होते ही दिवोदास ने झपट कर खाण्डा उठा लिया। उसने कापालिक पर तूफानी आक्रमण किया। परन्तु कापालिक में बड़ा बल था। उसने खांडे सहित दिवोदास को उठाकर दूर पटक दिया। इसी समय सुखदास का खाण्डा उसकी गर्दन पर पड़ा और वह वहीं लड़खड़ा कर गिर गया। वृद्ध ने भी एक यमदूत को भूमिशायी किया। शेष दो प्राण लेकर भाग गए।

सुखदास ने हाथ का सहारा दे दिवोदास को उठाया और

बोला—"साहस करो भैया, यहां से भाग चलो।"

दिवोदास ने कन्धे पर मंजु को लाद लिया। दोनों व्यक्ति नंगी तलवार लिए साथ चले। वर्षा अब बन्द हो गई थी—आकाश स्वच्छ हो गया था। वे बराबर उत्तराभिमुख होते जा रहे थे। मद्य के प्रभाव से मंजु मूर्छित हो गई थी। दिवोदास के भी पांव लड़खड़ा रहे थे। परन्तु वह साथियों के साथ भागे जा रहा था। मंजु उसकी पीठ से खिसकी पड़ती थी। सुखदास उन्हें सहारा दे रहा था। इसी समय एक ओर से दस अश्वारोही सैनिकों ने उन्हें घेरकर बन्दी बना लिया। सारा उद्यम विफल हो गया। वे चारों को बांधकर ले चले। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सिद्धेश्वर के सैनिक थे।

20

चारों अपराधियों का विचार हो रहा था। उच्च स्वर्ण-पीठ पर आचाय वज्रसिद्धि, सिद्धेश्वर और काशीराज उपस्थित थे। उनके सम्मुख चारों अपराधी रस्सियों से बंधे खड़े थे। पीछे तलवार लिए सैनिक खड़े थे। दर्शकों की बड़ी भारी भीड़ एकत्रित थी।

मंजुघोषा ने करुण स्वर में चिल्लाकर कहा—

"आर्य पुत्र, इनसे कह दो कि हम धर्मतः पति-पत्नी हैं। हमने देवता की साक्षी में विवाह किया है।"

"प्रिये अधीर मत हो। देखो तो भण्ड पाखण्डी क्या निर्णय करते हैं।"

काशीराज ने कहा—"भिक्षु, तुम क्या कहना चाहते हो?"

"महाराज, वह मेरी विवाहिता पत्नी है और मैं श्रेष्ठ धनंजय का पुत्र दिवोदास हूं। मेरी यह पत्नी लिच्छवि राजनन्दिनी मंजुघोषा है।"

वज्रसिद्धि ने कहा—"शातं पापं, तूने मुझसे प्रवज्या ली है, तू ऐसा कहकर भिक्षु धर्म से च्युत होता है।"

मंजु ने कहा—"प्रियतम् इनसे कह दो कि मैं तुम्हारे भावी पुत्र की माता हूं, जो मेरे उदर में पोषण पा रहा है।"

सिद्धेश्वर—"तू देवार्पित देवदासी है। क्या तूने ऐसा पातक किया है? इससे तो देवाधिष्ठान ही कलंकित हो गया।"

मंजु—"कलंकित किया मैंने या तुम जैसे धर्म-ढोंगियों ने, जो जंगली पशु की भांति खून के प्यासे हों। तुम गाय की खाल ओढ़कर धर्म के ठेकेदार बने बैठे हो। धर्म की आड़ में आखेट करने वाले पेशेवर अपराधी हो, क्या सब खोलकर कह दूं?"

सिद्धेश्वर—"महाराज, ये धर्मापराधी हैं। इनका विचार धर्मानुमोदित होना चाहिए, राज नियामानुसार नहीं। आप इसमें विक्षेप मत कीजिये, मैं इस दासी का प्रायश्चित्त विधान करूंगा।"

फिर उसने सैनिकों से कहा—"अरे सैनिको, इस दासी को अभी ले जाओ, मैं इसके पाप के प्रायश्चित्त की समुचित व्यवस्था करूंगा।"

दिवोदास—"कदापि नहीं महाराज, मैं आपको सावधान करता हूं कि लिच्छवि राजनन्दिनी का यदि बाल भी बांका हो गया तो आपके राज्य का खण्ड-खण्ड हो जायेगा।"

काशीराज—"युवक, तुम बड़े उद्धत प्रतीत होते हो, काशीराज की मर्यादा को तुम यदि नहीं जानते तो चुप रहो।" वज्रसिद्ध की ओर दृष्टि करके कहा—"आचार्य, आपके भिक्षु ऐसा ही विनय सीखते हैं?"

वज्रसिद्ध—"महाराज, मैं इसका धर्मानुशासन करूंगा, अरे भिक्षुओ! इस उन्मत्त भिक्षु को ले जाओ।" फिर उसने काशीराज से कहा—"अब मैं जाता हूं। आपका कल्याण हो।"

दिवोदास को भिक्षुगण बांधकर एक ओर तथा मंजु को सैनिक दूसरी ओर ले चले, तो मंजु ने कहा—"प्राणनाथ, नदी तीर की वह प्रतिज्ञा याद रखना।"

दिवोदास ने कहा—"उसे जीते जी नहीं भूलूंगा।"

"तुम्हें आना होगा, कहो आओगे?"

"आऊंगा प्रिये, आऊंगा।"

"तो मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।"

"मैं प्राणों पर खेलकर भी आऊंगा।"

दोनों को दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींचकर ले जाया गया। सुखदास और वृद्ध ज्वाला रह गए। सुखदास ने कहा—"मैं भिक्षु हूं, मेरा धर्मानुशासन आचार्य करेंगे।"

आचार्य ने कहा—"इन दोनों मुर्दों को भी महाराज मेरे ही सुपुर्द कर दें।"

काशीराज ने स्वीकार किया। आचार्य उठकर चल दिये। आवास पर आने पर सुखानन्द ने उनसे कहा—"मैं एक आवश्यक निवेदन एकान्त में करना चाहता हूं।" आचार्य ने एकान्त में ले जाकर कहा—"क्या करना चाहते हो तुम।"

"आचार्य, मैं निरपराध हूं, और यह वृद्ध भी।"

"तू निरपराध कैसे है?"

"आचार्य के विरुद्ध सिद्धेश्वर महाराज ने जो षड्यंत्र रचा था—मैं उसी की छानबीन कर रहा था, आचार्य। मुझे अपना कार्य करने दीजिए।"

"कौन-सा कार्य।"

"आचार्य उस देवदासी को साथ ले जाना चाहते हैं न!"

"चाहता तो हूं।"

"पर सिद्धेश्वर की उस पर कुदृष्टि है।"

"यह मैं देख चुका हूं।"

"परन्तु मैं उसे यहां से उड़ा ले चलूंगा।"

"किस प्रकार?"

"यह मुझ पर छोड़िए आचार्य।"

"किन्तु धर्मानुज जो है।"

"वह तो आपके आधीन है आचार्य, वह कर क्या सकता है?"

"और यह बूढ़ा मूर्ख कौन है?"

"एक गंवार है आचार्य, लोभ-लालच देकर अपनी सहायता के लिए रख लिया था।"

"तो तुम दोनों को मुक्त करता हूं, कार्य करो।"

"किन्तु आचार्य, केवल मुक्त ही नहीं। स्वर्ण भी चाहिए।"

"स्वर्ण भी ले भद्र, पर उस दासी को संग ले आ।"

"यह कौन-सी बड़ी बात है, कह दूंगा, मैं उस भिक्षु का नौकर हूं, उसी ने तुझे बुलाया है। हंसती-खेलती चली आयेगी।"

"इसके बाद?"

"इसके बाद जैसा आचार्य चाहें।"

"तो भद्र, तू चेष्टा कर।"

"आचार्य, मुझे इस मूर्ख धर्मानुज से भी मिलने की अनुमति दी जाये।"

"किसलिए?"

"उसे बहका-फुसलाकर एक पत्र उस दासी के नाम लिखा सकूं तो कार्य जल्द सिद्ध होगा।"

"तो तुझे स्वतंत्रता है।"

"आचार्य, फिर तो काम सिद्ध हुआ रखा है।" वह सिर हिलाता हुआ, वृद्ध चरवाहे के साथ एक ओर को रवाना हो गया।

21

सुखदास की युक्ति और उद्योग से मंजु और देवी सुनयना अंधकूप से मुक्त होकर भाग निकलीं। परन्तु इस विपत्ति में एक दूसरी विपत्ति आ खड़ी हुई। मंजु को प्रसव वेदना होने लगी। देवी सुनयना ने सुखदास से कहा—"अब तो कहीं आश्रय खोजना होगा। चलना संभव ही नहीं है।"

निरुपाय मंजु को एक वृक्ष के नीचे आश्रय दे सुखदास और वृद्ध चरवाहा दोनों ही आहार और आश्रय की खोज में निकले। परन्तु इसी बीच ही में मंजु शिशु प्रसव करके मूर्छित हो गई। यह दशा देख देवी सुनयना घबरा गईं। उन्होंने साहस करके शिशु की परिचर्या की तथा मंजु की जो भी संभव सुश्रुषा हो सकती थी, करने लगी। मंजु की दशा बहुत खराब हो रही थी। थकान, भूख और शोक से वह पहले ही जर्जर हो चुकी थी, अब इतना रक्त निकल जाने से उसके मुंह पर जीवन का चिह्न ही न रहा। सुनयना यह देख डर गई। उसने यत्न से उसकी मूर्छा दूर की। होश में आकर मंजु एकटक मां का मुंह देखने लगी। फिर बोली—"मां, अब उनके दर्शन तो न हो सकेंगे?"

"क्यों नहीं बेटी।"

"उन्होंने कहा था—जब पुत्र होगा—तब मैं आऊंगा।"

कुछ रुककर पुनः बोली—"पर उनके आने के पहले तो हम वहां चल रहे हैं।"

"नहीं जानती मां, मैं कहां जा रही हूं, किन्तु मेरा एक अनुरोध रख लो मां।"

"कह बेटी।"

"यदि मेरी मृत्यु हो जाए और वे न आयें तो जैसे बने बच्चे को उनके पास अवश्य पहुंचा देना और यह संदेश भी दे देना कि तुम्हारे आने की आशा में मंजु अब जक जीवित रही, अब तुम्हारे निराश प्रेम का फल तुम्हारे लिए छोड़ गई।"

"बेटी, इतना धीरज न छोड़ो।"

"मां! कदाचित् यह अस्तगत सूर्य की स्वर्ण-किरण मेरी मुक्ति का संदेश लाई हैं।"

"अरी बेटी, ऐसी अशुभ बात मत कह, तुम फलो-फूलो और मैं इन आंखों से तुम्हें देखूं। इसीलिए न मैंने अब तक अपने जीवन का भार ढोया।"

सुनयना रोने लगी। मंजु ने कहा—"मां, दुखी न हो, इस फूल की पंखुड़ियां झर जायेंगी और झंझा वायु उन्हें उड़ाकर कहां की कहां ले जायेगी। आह! सूर्य आज भी अस्त हो गया। वे न आए, न आए। अंधकार बढ़ा चला आ रहा है। यह जैसे मेरे जीवन पर पर्दा डाल देगा। कदाचित् मेरे जीवन के दीपक को बुझने का समय आ गया।" वह मूर्छित होकर निर्बल हो गई। सुनयना ने घबराकर कहा—"मंजु, मंजु, आंखें खोलो बेटी, इस फूल से सुकुमार बच्चे को देखो।"

मंजु ने आंखें खोलकर टूटे-फूटे स्वर में कहा—"नहीं आये, इस अपने नन्हें को देखने भी नहीं आये। आह! कैसा प्यारा है नन्हा, आनन्द की स्थाई मूर्ति, मां उसे मेरे और पास लाओ।"

"वह तो तुम्हारे पास ही है बेटी।"

"और पास, और पास, और, और..." वह बेसुध हो गई। फिर उसने आंख खोलकर बच्चे को देखकर कहा—"वैसी ही आंखें हैं, वैसे ही होंठ", उसने मुंह चूम लिया और हृदय से लगा लिया।

इसके बाद ही उसकी आंखें पथरा गईं और चेहरा सफेद हो गया। श्वांस की गति भी रुक गई। सुनयना देवी धाड़ मार कर रो उठीं। उन्होंने कहा—"आह, मेरी बेटी, तू तो बीच मार्ग में ही चली—मेरी सारी तपस्या विफल हो गई।"

परन्तु देवी सुनयना को इस विपत्काल में रोकर जी हलका करने का अवसर भी नहीं मिला। उसे निकट ही अश्वारोहियों के आने का शब्द सुनाई दिया। अब वह क्या करे? उसका ध्यान बच्चे पर गया। उसे उठाकर उन्होंने अपनी छाती से लगा लिया। एक बार उन्होंने मंजु

के निमीलित नेत्रों की ओर देखा। घोड़ों की पदध्वनि निकट आ रही थीं। उसे मंजु का अनुरोध याद आया और हृदय में साहस कर उन्होंने अपना संकल्प स्थिर किया। उन्होंने कहा—"विदा बेटी, तुझे मैं माता वसुन्धरा को सौंपती हूं और तेरा अनुरोध पालन करने जा रही हूं।" उन्होंने वस्त्र से मंजु का मुंह ढांप दिया और बालक को छाती से लगाकर एक ओर चलकर अंधकार में विलीन हो गई।

22

दिवोदास संघाराम के गुप्त बंदीगृह में बन्द था। उस बंदीगृह में ऊपर छत के पास केवल एक छेद था, जिसके द्वारा भोजन और जल, बन्दी को पहुंचा दिया जाता था। उसी छेद द्वारा चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणें बन्दीगृह में आ रही थीं। उसी को देखकर दिवोदास कह रहा था—"आह कैसी प्यारी है, प्यारी की मुस्कान की भांति उज्ज्वल और शीतल।" उसने पृथ्वी पर झुककर वह स्थल चूम लिया। बाहर चांदनी छिटक रही होगी। रात दूध में नहा रही होगी। परन्तु मेरा हृदय इस बन्दीगृह के समान, अंधकार से परिपूर्ण है।

वह दोनों हाथों से सिर थामकर बैठ गया। इसी समय एक खटका सुनकर वह चौंक उठा। बन्दीगृह का द्वार खोलकर पहरेदार ने आकर कहा—"यह स्त्री तुमसे मिलना चाहती है, परन्तु जल्दी करना। भणे, मैं अधिक प्रतीक्षा नहीं करूंगा।"

काले वस्त्रों में आवेष्टित एक स्त्री उसके पीछे थी, उसे भीतर करके प्रहरी ने बंदीगृह का द्वार बन्द कर लिया।

दिवोदास ने कहा—"कौन है?"

"यह अभागिनी सुनयना है।"

"मां, तुम आई हो?"

"बड़ी कठिनाई से आ पाई हूं दिवोदास, तुम न आ सके न!"

"न आ सका, किन्तु मेरा पुत्र?"

"पुत्र प्रसव हुआ, किन्तु तुम झूठे हुए बेटे।"

"हां मां, मंजु से कहो वह मुझे दण्ड दे।"

"उसने दण्ड दे दिया, बच्चे।"

"तो मां, मैं उसे हंसकर सह लूंगा, कहो क्या दण्ड दिया है?"

"सह न सकोगे!"

"ऐसा दण्ड है? मां!"

"हां पुत्र।"

"नहीं, हो सकता, मंजु मुझे दण्ड दे और मैं सह न सकूं? सहकर हंस न सकूं तो मेरे प्यार पर भारी कलंक होगा मां।"

"कैसे कहूं?"

"कहो मां?"

"सुन न सकोगे।"

"कहो-कहो।"

"उसने अपने प्राण दे दिए।"

"प्राण?"

"हां पुत्र, हम बन्दीगृह से मुक्त होकर भागे आ रहे थे। मार्ग ही में उसने एक वृक्ष के नीचे पुत्र को जन्म दिया और फिर मुझसे एक अनुरोध करके वह विदा हुई।"

"क्या अनुरोध था मां।"

"यही कि यदि मेरी मृत्यु हो जाए तो मेरे पुत्र को उन तक पहुंचा देना।"

"तो मेरा पुत्र?"

"वह मैंने खो दिया।"

"खो दिया?"

राह में मैं भूख और प्यास से जर्जर हो सो गई। जब आंख खुली तो शिशु न था; कौन जाने उसे कोई वनपशु उठा ले गया या...सुनयना आगे कुछ न कहकर फूट-फूट कर रो उठी।

"मेरे पुत्र को तुमने खो दिया और उसने प्राण दे दिया। खूब हुआ।" दिवोदास अट्टहास करके हंसने लगा। "हा, हा, हा, प्राण दे दिया, प्राण दे दिया, खो दिया।" उसने फिर अट्टहास किया और कष्ट के कुन्दे की भांति अचेत होकर भूमि पर गिर गया।

इसी समय प्रहरी ने भीतर आकर कहा—"बस अब समय हो गया। बाहर आओ।" देवी सुनयना संज्ञाहीन-सी बाहर आई और एक वृक्ष के नीचे भूमि पर पड़ गईं।

23

दिवोदास पागल हो गया है। यह संदेश पाकर आचार्य ने उसे बंदीगृह से मुक्त कर दिया। अब वह निरीह भाव से संघाराम में घूमने लगा। कोई उससे घृणा करता, कोई उस पर दया करता। उसके वस्त्र और शरीर गंदे और मलिन हो गये थे। दाढ़ी बढ़कर उलझ गई थी। भिक्षु उसकी खिल्ली उड़ाते थे। कुछ उसे चिढ़ा देते थे। परन्तु दिवोदास इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं देता था। वह जैसे किसी अतीत काल में जीवित रह रहा था।

दिवोदास अति उदास, गहरी चिन्ता में पागल जैसा एक शिलाखण्ड पर बैठा था। वह कभी हंसता, कभी गुनगुनाता था। उसके हाथ में एक गेरू का टुकड़ा था, उससे वह जल्दी-जल्दी मंजुघोषा का चेहरा बना लेता था, चेहरा बनाकर हंसता था, उसे प्यार करता था, उससे बातें करता था। एक वृक्ष को लक्ष्य करके उन्मत्त भाव से देखता था। वहां उस वृक्ष में उसे मंजुघोषा दृष्टि पड़ रही थी।

दिवोदास हाथ फैलाकर दीन भाव से बोल उठा—"आओ प्यारी, आओ, मुझे क्षमा करो, मैं नहीं आ सका।" उसने देखा—मूर्ति मुस्कराने लगी। उसके होंठ हिलने लगे, दो बूंद आंसू उसकी आंखों से टपक पड़े। उसने उंगली उठाकर कहा—'झूठे'। पागल दिवोदास उससे लिपटने को दौड़ा और टकराकर गिर पड़ा। मूर्ति गायब हो गई। उसने उठकर कहा—"आह? झूठा, झूठा, सचमुच में झूठा हूं।" उसने सामने एक शिलाखण्ड की ओर देखा। वहां मंजु बैठी मुस्कुरा रही थी। वह दौड़ा, मूर्ति उसी भाव से वही शब्द करती हुई गायब हो गई। दिवोदास पत्थर से टकराकर फिर गिर पड़ा। फिर उठकर 'मंजु-मंजु' चिल्लाने लगा। जिस वस्तु पर उसकी नजर जाती वहीं उसे मंजु की मूर्ति वही संकेत करके, वही शब्द कहकर गायब हो जाती। वह पागल की तरह दौड़ता और टक्करें खाकर गिरकर घायल हो जाता। वह क्षत-विक्षत और जर्जर

हो गया। उसी समय आचार्य वज्रसिद्ध उसके निकट आए।

वज्रसिद्ध कुछ देर उसकी दुर्दशा देखकर बोले—"पुत्र, यह तुम क्या कर रहे हो?"

दिवोदास ने आंखें फाड़कर बड़ी देर तक वज्रसिद्ध को देखा और वज्रसिद्ध के निकट आकर कहा—"प्रिय मंजु, क्या तुमने मुझे क्षमा कर दिया!" और वह वज्रसिद्ध से लिपट गया है।

वज्रसिद्ध ने उसे पीछे धकेल कर कहा—"भिक्षु सावधान! देखो, मैं संघस्थिविर आचार्य वज्रसिद्ध हूं।

दिवोदास आचार्य को देखकर, कांपता हुआ हटकर खड़ा हो गया और कहा, "आचार्य वज्रसिद्ध, क्या तुम मंजु का संदेश लाये हो? क्या वह आ रही है?"

वज्रसिद्ध—"भिक्षु तुम पागल हो गये हो।"

दिवोदास—"पागल, प्रेम का पागल, मैं पागल हो गया हूं!"

वज्रसिद्ध—"(कठोर वाणी से) मेरे साथ आओ।"

दिवोदास—"क्या तुम मुझे मंजु के पास ले जा रहे हो?"

वज्रसिद्ध—"आओ।"

वज्रसिद्ध ने उसे अपने पीछे आने का संकेत किया और चल दिया। दिवोदास भी पीछे-पीछे चल दिया।

वज्रसिद्ध दिवोदास के साथ वज्रतारा की प्रतिमा के आगे पहुंच, दिवोदास की ओर आज्ञाभरी दृष्टि से देखकर उन्होंने कहा—"भिक्षु वज्रतारा को प्रणाम करो।"

दिवोदास ने प्रतिमा में भी मंजु की वही मूर्ति देखी और कहा—"प्यारी, तुम आ गईं? आओ! मैं नहीं आ सका। इससे क्या तुम नाराज हो?" वह दौड़कर मूर्ति से लिपट गया।

वज्रसिद्ध—"सुनो!"

दिवोदास—"(धीरे से उत्साह से) सब सुन रहा हूं। वह कुछ कह रही है। वह कुछ कहना चाहती है। वह ध्यान से फिर प्रतिमा को देखने लगा। उसने देखा। मंजु कुछ संकेत कर रही है, दिवोदास ने उधर हाथ फैला दिया।

वज्रसिद्ध—"(दिवोदास को झकझोर कर) सुनो, तुम्हें वज्रतारा की मूर्ति बनानी होगी। मालूम हुआ है, तुम कुशल चित्रकार हो गये हो।"

दिवोदास—"मैं अभी प्यारी की मूर्ति बनाता हूं।"

उसने क्षट झण भर में गेरू से दीवार पर मंजु की ठीक सूरत बना दी और फिर रो-रो कर कहने लगा—"क्षमा करो, मंजु, प्रिये, क्षमा करो।"

वज्रसिद्ध ने क्रुद्ध होकर कहा—"तुम्हें वज्रतारा की मूर्ति बनानी होगी। इसके लिए कई मास तक तुम्हें एकान्त में रहना होगा।"

उन्होंने एक भिक्षु से कहा—"गोपेश्वर, तुम उसको सब व्यवस्था समझाकर, सब प्रबन्ध कर दो।" इतना कह आचार्य चले गये।

24

दिवोदास की छेनी खटाखट चल रही थी। भूख-प्यास और शीत-ताप उसे नहीं व्याप रहा था। अपने शरीर की उसे सुध नहीं थी। वह निरन्तर अपना काम कर रहा था। छेनी पर हथौड़े की चोटें पड़ रही थीं और शिलाखण्ड में से मंजु की मंजुल मूर्ति विकसित होती जा रही थी। वह सर्वथा एकान्त स्थल था। वहां किसी को भी आने की अनुमति न थी। वह कभी गाता, कभी गुनगुनाता, कभी हंसता और कभी रोता जाता। उसकी तन्मयता, तन्मयता की सीमा को पार कर गई थी। जैसे वह मूर्ति में मूर्तिमय हो चुका हो।

मूर्ति बनकर तैयार हो गई। दिवोदास के शरीर में केवल हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। उसकी दाढ़ी और सिर के बालों ने उलझ कर उसकी सूरत भूत के समान बना डाली थी। परन्तु उस एकान्त अनुष्ठान में कोई उसके पास नहीं आ पाता था।

वह बड़ी देर तक मूर्ति के मुख को एकटक देखता रहा। वह मुंह हूबहू मंजु का मुंह था।

उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मुंह मुस्करा रहा है। उसे उसके ओंठ हिलते दिखाई पड़े। उसने जैसे सुना कि उन ओंठों में से एक शब्द बाहर हुआ 'झूठे'। उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसने मूर्ति के पैरों में गिरकर कहा—"मुझे क्षमा करो मंजु, मैं नहीं आ सका। पर तुमने मेरा पुत्र भी तो खो दिया", दिवोदास कांप कर धरती पर गिर गया और अन्त में द्वार तोड़ चिल्लाता हुआ गहन वन में भाग गया।

वज्रतारा पूजा महोत्सव पर्व था। सहस्रों भिक्षु एकत्रित थे। संघाराम विविध भांति सजाया गया था। दूर-दूर से श्रद्धालु श्रावक, गृहस्थ और श्रेष्टिजन आये थे। बीच प्रांगण में स्वर्ण-मण्डित रथ था। उस पर वस्त्र में आवेष्टित वज्रतारा की मूर्ति थी। आचार्य वज्रसिद्ध बड़े व्यस्त थे। उन्होंने व्यग्रभाव से कहा—"क्या अभी तक धर्मानुज का कोई पता नहीं लगा?"

"नहीं आचार्य, चारों ओर गुप्तचर उसे खोजने गये हैं।"

"परन्तु पूजन तो नियमानुसार वही कर सकता है जिसने मूर्ति बनाई है—अतः उसका अनुसंधान करो। मुहूर्त में अब देर नहीं है।" आज्ञा होने पर और भी चर भेज दिये गये।

दिवोदास अति दयनीय अवस्था में भूख-प्यास से व्याकुल, अर्धमृत-सा हो एक शिलाखण्ड पर अचेत पड़ा था। उसी समय चरों ने वहां पहुंचकर उसे देखा। उसे चेत में लाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उसकी मूर्छा भंग न हुई। निरुपाय चर उसे पीठ पर लादकर संघाराम में ले आये। संघाराम के चिकित्सकों ने उसका उपचार किया। उपचार से तथा थोड़ा दूध पीने से वह कुछ चैतन्य हुआ। परन्तु उसका उन्माद वैसा ही था।

बाहर बहुत कोलाहल हो रहा था। सहस्रों भिक्षु और भावुक भक्त चिल्ला रहे थे। डफ-मृदंग-मीरज बज रहे थे। सारा प्रांगण मनुष्यों से भरा था। महाराज यशोधवलदेव आ चुके थे। उन्होंने अधीर होकर कहा—"आचार्य, अब पूजन अनुष्ठान प्रारम्भ हो।"

आचार्य ने चिंतित स्वर में कहा—"भिक्षु धर्मानुज को यहां लाओ। वह विधि-पूजन करे।"

कुछ भिक्षु उसे पकड़कर ले आये। वह गिरता पड़ता आकर मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर हंसने लगा। इसी समय मूर्ति का आवरण उठाया गया। मूर्ति के मुख पर दिवोदास ने दृष्टि डाली। उसने देखा मूर्ति मुस्करा रही है। उसने फिर देखा मूर्ति ने दो उंगली ऊपर उठाकर कहा 'झूठे'। उसने स्वयं वह शब्द सुना। स्पष्ट उसने मूर्ति के ओंठों को हिलते देखा। यह देखते ही दिवोदास मूर्छित होकर मूर्ति के चरणों में गिर गया। अनुष्ठान खण्डित हो गया। आचार्य वज्रसिद्ध असंयत होकर उठ खड़े हुए। सहस्र-सहस्र भिक्षु नमो अर्हन्ताय—नमो बुद्धाय चिल्ला उठे।

आचार्य ने उच्च स्वर से कहा—"इस विक्षिप्त भिक्षु को भीतर ले जाओ। मैं स्वयं अनुष्ठान सम्पूर्ण करूंगा।"

परन्तु इसी समय मेघ गर्जन के समान एक आवाज आई—"ठहरो।"

"नहीं आचार्य, चारों ओर गुप्तचर उसे खोजने गये हैं।"

"परन्तु पूजन तो नियमानुसार वही कर सकता है जिसने मूर्ति बनाई है—अतः उसका अनुसंधान करो। मुहूर्त में अब देर नहीं है।" आज्ञा होने पर और भी चर भेज दिये गये।

दिवोदास अति दयनीय अवस्था में भूख-प्यास से व्याकुल, अर्धमृत-सा हो एक शिलाखण्ड पर अचेत पड़ा था। उसी समय चरों ने वहां पहुंचकर उसे देखा। उसे चेत में लाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उसकी मूर्छा भंग न हुई। निरुपाय चर उसे पीठ पर लादकर संघाराम में ले आये। संघाराम के चिकित्सकों ने उसका उपचार किया। उपचार से तथा थोड़ा दूध पीने से वह कुछ चैतन्य हुआ। परन्तु उसका उन्माद वैसा ही था।

बाहर बहुत कोलाहल हो रहा था। सहस्रों भिक्षु और भावुक भक्त चिल्ला रहे थे। डफ-मृदंग-मीरज बज रहे थे। सारा प्रांगण मनुष्यों से भरा था। महाराज यशोधवलदेव आ चुके थे। उन्होंने अधीर होकर कहा—"आचार्य, अब पूजन अनुष्ठान प्रारम्भ हो।"

आचार्य ने चिंतित स्वर में कहा—"भिक्षु धर्मानुज को यहां लाओ। वह विधि-पूजन करे।"

कुछ भिक्षु उसे पकड़कर ले आये। वह गिरता पड़ता आकर मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर हंसने लगा। इसी समय मूर्ति का आवरण उठाया गया। मूर्ति के मुख पर दिवोदास ने दृष्टि डाली। उसने देखा मूर्ति मुस्करा रही है। उसने फिर देखा मूर्ति ने दो उंगली ऊपर उठाकर कहा 'झूठे'। उसने स्वयं वह शब्द सुना। स्पष्ट उसने मूर्ति के ओंठों को हिलते देखा। यह देखते ही दिवोदास मूर्छित होकर मूर्ति के चरणों में गिर गया। अनुष्ठान खण्डित हो गया। आचार्य वज्रसिद्ध असंयत होकर उठ खड़े हुए। सहस्र-सहस्र भिक्षु नमो अर्हन्ताय—नमो बुद्धाय चिल्ला उठे।

आचार्य ने उच्च स्वर से कहा—"इस विक्षिप्त भिक्षु को भीतर ले जाओ। मैं स्वयं अनुष्ठान सम्पूर्ण करूंगा।"

परन्तु इसी समय मेघ गर्जन के समान एक आवाज आई—"ठहरो।"

सहस्रों ने देखा। एक भव्य प्रशान्त मूर्ति धीर स्थिर गति से चली आ रही है। उसके पीछे सुनयना वस्त्र में कुछ लपेटे हुए है। उनके पीछे सुखदास और वह वृद्ध ग्वाला है। लोगों ने देखा उसी सौम्य मूर्ति के साथ महाश्रेष्टि धनंजय भी हैं।

सौम्य मूर्ति सबके देखते-देखते वेदी पर चढ़ गई। उसने प्रतिमा के सिर पर हाथ रखा। हाथ रखते ही प्रतिमा सजीव हो गई। वह हिलने लगी। प्रतिमा में सजीवता के लक्षण देख सहस्रों कण्ठ भगवती वज्रतारा की जय चिल्ला उठे। प्रतिमा ने हाथ उठाकर सबको शान्त और चुप रहने का संकेत किया।

क्षण भर ही में सन्नाटा हो गया। मूर्ति ने वीणा की झंकार के समान मोहक स्वर में कहा—"मूढ़ भिक्षुओ, तुम जानते हो कि धर्म क्या है?"

सहस्रों कण्ठों ने कहा—"माता आप हमें धर्म की दीक्षा दीजिये।"

मूर्ति ने कहा—"मनुष्य के प्रति मनुष्यता का व्यवहार करना सबसे बड़ा धर्म है, संसार को संसार समझना धर्म का मार्ग है।"

सहस्रों कण्ठों से निकला—"मातेश्वरी वज्रतारा की जय हो।"

मूर्ति ने फिर वज्रसिद्ध की ओर उंगली से संकेत करके कहा—"यह धर्मढोंगी पुरुष, लाखों मनुष्यों को धर्म से दूर लिए जा रहा है। मैं इस पाखंडी का वध करूंगी।" मूर्ति ने सहसा खड्ग ऊंचा किया। जनता स्तब्ध रह गयी। भिक्षुगण चिल्ला उठे—

"रक्षा करो, देवी रक्षा करो।"

वज्रसिद्ध अब तक विमूढ़ बना खड़ा था। अब उसने मूर्ति के रूप में मंजु को पहचान कर कहा—"यह देवी वज्रतारा नहीं है। यह पापिष्ठा धूर्त पापेश्वर के मन्दिर की अधर्म देवदासी मंजुघोषा है, इसे बांध लो।"

मंजु ने कहा—"वही हूं और तुमसे पूछती हूं कि तुम मनुष्य को मनुष्य की भांति क्यों नहीं रहने देना चाहते।"

वज्रसिद्ध ने फिर गरजकर कहा—"बांधो इस पापिष्ठा को।"

जनता में कोलाहल उठ खड़ा हुआ। सहस्रों भिक्षु रथ पर टूट पड़े।

अब उस भव्य सौम्य पुरुष-मूर्ति ने हाथ उठाकर कहा—"सब कोई जहां हो—वही शान्त खड़े रहो।"

इस बार फिर सन्नाटा हो गया। उसी भव्य मूर्ति ने उच्च स्वर से कहा—"मैं महामोग्गालि पुत्र तिष्य, तुम्हें शान्त रहने को कहता हूं।"

मोग्गालि पुत्र तिष्य का नाम सुनते ही—सहस्र-सहस्र सिर पृथ्वी पर झुक गए। महाराज यशोधवल देव ने उठकर साष्टांग दण्डवत किया। लोग आश्चर्य विमुग्ध उस महापुरुष को देखने लगे जिसका दर्शन सर्वथा पाना दुर्लभ था।

तिष्य ने देवी सुनयना को संकेत किया। उन्होंने वस्त्र में आवेष्ठित बालक को मंजु की गोद में दे दिया। मंजु ने खड्ग रखकर बालक को छाती से लगाकर कहा—"यह मेरा पुत्र है, जिसे वे अभागे धर्म-पाखण्डी पाप का फल कहते हैं, जिनके अपने पाप ही अगणित हैं।"

भिक्षुओं में फिर क्षोभ उठ खड़ा हुआ।

तिष्य ने मेघ गर्जन के स्वर में कहा—"भिक्षुओ शान्त रहो", फिर उन्होंने दिवोदास के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"उठो श्रेष्टि पुत्र।"

दिवोदास जैसे गहरी नींद से जग गया हो। उसने इधर-उधर आश्चर्य से देखा—फिर पुत्र को गोद में लिये मंजु को सम्मुख मुस्कुराती खड़ी देखकर, बारम्बार आंख मिलाकर कहा—"यह मैं क्या देख रहा हूं—स्वप्न है या सत्य।"

"सब सत्य है, प्राणधिक, यह तुम्हारा पुत्र है, इसका चन्द्रमुख तो देखो।"

दिवोदास का लुप्त ज्ञान पीछे लौट रहा था—उसने भुन-भुनाकर कहा—"'कैसी मीठी भाषा है, कैसे ठंडे शब्द हैं, अहा कैसा सुख मिला, जैसे कलेजे में ठण्डक पड़ गई हो।"

मंजु ने कहा—"प्यारे प्राणेश्वर, इधर देखो।" उसने दिवोदास का हाथ पकड़ लिया। दिवोदास का उस स्पर्श से चैतन्य जाग उठा—उसने कहा—"क्या, क्या तुम हो—सचमुच? स्वप्न नहीं है?" वह फिर आंखें मलने लगा।

मंजु ने कहा—"स्वामिन्, आर्य पुत्र यह तुम्हारा है, लो।"

मेरा पुत्र? उसने दोनों हाथ फैला दिये। पुत्र को लेकर उसने छाती से लगा लिया।

वज्रसिद्ध ने एक बार फिर अपना प्रभाव प्रकट करना चाहा और उसने ललकार कर कहा—"भिक्षुओ, इन धर्म-विद्रोहियों को बांध लो।"

भिक्षुओं ने एक बार फिर शोर मचाया। वे रथ पर टूट पड़े। दिवोदास ने रोकना चाहा—परन्तु वह धक्का खाकर गिर गया।

सहसा महाराज यशोधवल देव ने खड़े होकर कहा—"जो जहां है, वहां खड़ा रहे।"

महाराज की घोषणा सुनते ही एक बार स्तब्धता छा गई। महाराज ने सेनापति को आज्ञा दी—सेनापति इन उन्मत्त भिक्षुओं को घेर लो। क्षण भर ही में सेना ने समस्त भिक्षु मण्डली को तलवारों की छाया में ले लिया। आतंकित होकर भिक्षु मंत्रपाठ भूल गये। जनता भयभीत हो भागने की जुगत सोचने लगी।

वज्रसिद्ध ने क्रुद्ध होकर कहा—"महाराज यह आप अधर्म कर रहे हैं।"

महाराज ने कहा—"मैं यह जानना चाहता हूं आचार्य, कैसा धर्म कार्य हो रहा है?"

"देव आप धर्मव्यवस्था में बाधा मत डालिए।"

"परन्तु मैं पूछता हूं कि यह कैसी धर्मव्यवस्था है!"

"आप अपने गुरु का अपमान कर रहे हैं।"

मेरी बात का उत्तर दो आचार्य, "क्या आपने काशीराज से मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यंत्र नहीं किया? श्रेष्टिराज धनंजय के धन को हड़पने के लिए उनके पुत्र को अनिच्छा से भिक्षु बनाकर उसे गुप्त यंत्रणायें नहीं दी हैं? क्या तुम लिच्छविराज के गुप्तधन को पाने का षड्यंत्र नहीं रच रहे हो?"

"देव, इन अपमानजनक प्रश्नों का मैं उत्तर नहीं दूंगा।"

"तो आचार्य वज्रसिद्ध, इन आरोपों के आधार पर मैं तुम्हें

आचार्य पद से च्युत करता हूं—और बन्दी बनाता हूं। उन्होंने सेनापति से ललकार कर कहा—

"सेनापति इन्द्रसेन, वज्राचार्य और इनके सब साथियों को अपनी रक्षा में ले लो तथा संघाराम और उसके कोष पर राज्य का पहरा बैठा दो। तुम्हारे काम में जो विघ्न डाले उसे बिना विलम्ब खड्ग से चार टुकड़े करके संघाराम के चारों द्वारों पर फेंक दो।" सेनापति ने अपनी नंगी तलवार आचार्य के कंधे पर रखी।

वज्रसिद्ध ने कहा—"भिक्षुओ, यह राजा पतित हो गया है, इसे अभी मार डालो।"

भिक्षुओं में क्षोभ उत्पन्न हुआ—सैनिक शस्त्र लेकर आगे बढ़े।

अब तिष्य ने दोनों हाथ ऊंचे करके कहा—"सावधान भिक्षुओ, यह मोग्गाली पुत्र तिष्य तुम्हारे सम्मुख खड़ा है। तुमने तथागत के वचनों का अनादर किया है। बन्धुप्रेम के स्थान पर रक्तपात, अहिंसा के स्थान पर मांसाहार, संयम के स्थान पर व्यभिचार और त्याग के स्थान पर लोभ ग्रहण किया है, जिससे तुम्हारे चारों यमों का भंग हो गया है। तुमने भिक्षु वेश को कलंकित किया है, तथागत के पवित्र नाम को कलुषित किया है। मैं तुम्हें आदेश देता हूं कि अपने आचरणों को सुधारो या भिक्षुवेष त्याग दो।"

सहस्र-सहस्र—भिक्षु तिष्य के सम्मुख घुटनों के बल बैठ गए। महाराज ने कहा—"भिक्षुओ, तुम्हारे अनाचार की बहुत बातें मैंने सुनी हैं। प्रजा तुम्हारे अत्याचारों से तंग है। तुम्हारे गुरु-घंटाल का भंडाफोड़ हो गया है। मैं चाहता हूं भगवान तिष्य के आदेश का पालन करो। अभी भगवान् संघाराम में विराजेंगे। जाओ, अपने-अपने स्थान को लौट जाओ।" भिक्षुओं ने एक स्वर से महाराज और मोग्गाली पुत्र तिष्य का जय-जयकार किया। महाराज ने कहा—"श्रेष्टि, धनञ्जय, आओ अपने पुत्र—पौत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद दो।"

धनंजय दौड़कर पुत्र से लिपट गया। दिवोदास ने पिता के चरणों में गिरकर अभिवादन किया। मंजु ने भी सबको प्रणाम किया और बच्चे को श्वसुर की गोद में दे दिया।

महाराज ने कहा—"श्रेष्टिराज, यह सौभाग्य तुम्हें भगवान् तिष्य की कृपा से मिला है। उन्होंने मंजुघोषा और उसके पुत्र की प्राण रक्षा की और बड़े कौशल से मूर्ति के स्थान पर उसे प्रकट किया।"

सुनयना ने करबद्ध होकर कहा—"तो भगवन्—आप ही मेरे बच्चे के चोर हैं?"

"यह कार्य भी मुझे वीतराग पुरुष को करना पड़ा। जब मंजु को मैंने जंगल में असहाय वृक्ष के नीचे मूर्छितावस्था में पड़ा देखा तो उसे मैं अपने आश्रम में उठा लाया। उपचार से वह स्वस्थ हुई—तो बच्चे के लिए उसने बहुत आफत मचाई। मैं जानता था कि तुम राजी से बच्चा मुझे न दोगी। मंजु का जीवित रहना मैं तुम पर प्रकट करना नहीं चाहता था—इसी से चौर्य कार्य करना पड़ा। अब बुद्धं सरणं।"

"भगवन, मैं तो ऐसी अंधी हो गई कि पुत्री को अरक्षित छोड़कर भाग निकली, परन्तु मुझे बालक की रक्षा का विचार था।"

"यह सब भवितव्य था जो अकस्मात् हो गया।"

"किन्तु भगवन्, यहां मूर्ति के स्थान पर मंजु कैसे आ गई।"

"यह हमसे पूछिए, सुखदास ने आगे बढ़कर कहा, "हम लोग जब स्थान आदि की सुव्यवस्था करके वृक्ष के निकट पहुंचे तो वहां कोई न था। इससे हम बहुत व्याकुल हुए। सारा जंगल छान मारा। तब भगवान् के हमें दर्शन हुए और जब मंजु को हमारी देख-रेख में छोड़कर भगवान् बच्चा चुराने के लिए गये तो हमने मिलकर यह योजना बना ली। फिर भी मूर्ति को अपने स्थान से हटाकर वहां मंजु को बैठा देना आसान न था। परन्तु चमत्कार खूब हुआ! यह कहकर सुखदास हंसने लगा। सभी लोग हंस दिये। सुखदास ने कहा—"इस महात्मा ने प्राणपण से मंजु की सेवा करके प्राण बचाए तथा हमारी योजना न सफल होती यदि यह मदद न करते।" सुखदास ने वृद्ध ग्वाले की ओर संकेत किया।

ग्वाले ने चुपचाप सबको हाथ जोड़ दिये। तिष्य ने कहा—

"यह सब विधि का विधान है लिच्छविराज महिपी?" राजा ने अकचका कर कहा—"यह आपने क्या शब्द कहा! लिच्छविराज महिपी कौन!"

"महाराज, यह देवी सुनयना लिच्छविराज श्री नृसिंह देव की पट्टराजमहीषी कीर्ति देवी हैं, जिन्हें काशीराज ने छल से मारकर उनके राज्य को विध्वंस कर दिया था। मंजुघोषा इन्हीं की पुत्री है।"

महाराज ने कहा—"महाराज, इस राज्य में मैं आपका स्वागत करता हूं और राजकुमारी, आपका भी। इस कुमार को मैं वैशाली का राजा घोषित करता हूं और उनके लिए यह तलवार अर्पित करता हूं जो शीघ्र काशीराज से उनका बदला लेगी।"

राजा ने कहा, "हम दोनों—माता पुत्री कृतार्थ हुईं महाराज, आपकी जय हो। अब इस शुभ अवसर पर यह तुच्छ भेंट मैं दिवोदास को अर्पण करती हूं।"

उसने अपने कण्ठ से एक ताबीज निकालकर दिवोदास के हाथ में देते हुए कहा, "इसमें इस गुप्त रत्नकोष का बीजक है, जिसका धन 27 करोड़ रुपए मुद्रा है।"

"पुत्र, मुझ अभागिन विधवा का यह तुच्छ दहेज स्वीकार करो।"

श्रेष्टि धनंजय ने आगे बढ़कर कहा—"महारानी, आपने मुझे और मेरे पुत्र को धन्य कर दिया।" तिष्य ने हाथ उठाकर कहा—"आप सबका कल्याण हो।"

सबने आचार्य को प्रणाम किया और अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये।

26

श्रेष्टि धनंजय का रंगमहल आज फिर सज रहा था। कमरे के झरोखों से रंगीन प्रकाश छन-छन कर आ रहा था। भांति-भांति के फूलों के गुच्छ ताखों पर लटक रहे थे। मंजु उद्यान में लगी एक स्फटिक पीठ पर बैठी थी—सम्मुख पालने में बालक सुख से पड़ा अंगूठा चूस रहा था। दिवोदास पास खड़ा प्यासी चितवनों से बालक को देख रहा था।

मंजु ने कहा—"इस तरह क्या देख रहे हो प्रियतम?"

"देख रहा हूं कि इन नन्हीं-नन्हीं आंखों में तुम हो या मैं?"

"और इन लाल-लाल ओंठों में?"

"तुम।"

"नहीं तुम।"

"नहीं प्रियतम।"

"नहीं प्राण सखी।'

"अच्छा हम तुम दोनों।"

पति-पत्नी खिलखिलाकर हंस पड़े। दिवोदास ने मंजु को अंक में भरकर झकझोर दिया।